मेहरचंद्र लक्ष्मणदास हिंदी-पुष्पमाला—११

महाकवि भास कृत

पंच-रात्र

नाटक

अनुवादक

श्रीयुत बलदेव शास्त्री न्यायतीर्थ

प्रकाशक

मेहरचंद्र लक्ष्मणदास

संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

ईसवी सन् १९३८

प्रकाशक—
लाला तुलसीराम जैन, मैनेजिंग
प्रोप्राइटर, मेहरचंद्र लक्ष्मणदास,
संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

मुद्रक—
लाला ख़ज़ानचीराम जैन,
मैनेजर, मनोहर इलैक्ट्रिक प्रेस,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

प्राक्कथन

पावनता एवं प्रोज्ज्वलता के विशाल तथा आदर्श तपोवनों में विहार करने वाली, स्वर्गलोक श्रौर मर्त्यलोक को परस्पर अनुस्यूत करने वाली, नाना भाव-भंगियों से छलाछल भरी हुई, दिव्य-संगीतमयी तथा संसार की प्रत्येक वस्तु के साथ अठखेलियाँ करने वाली महाकवि भास की प्रतिभा की तुलना इस जीवलोक में दुर्लभ ही है।

सच बात तो यह है कि महाकवि की प्रतिभा, सब प्राणियों के साथ, चाहे वे संसार में अवहेलना के पात्र समझे गए हों अथवा स्पृहणीय, एक-सा व्यवहार करती है। वह न तो किसी को साक्षात् भगवान् ही समझती है श्रौर न किसी को सर्वथा जघन्य, उपेक्षणीय एवं घृणा का भाजन ही।

हम पहले कह चुके हैं कि महाकवि की प्रतिभा प्रत्येक वस्तु के साथ अठखेलियाँ करती है, उसके साथ दौड़ लगाती है, ऊपर उछलती है, नीचे कूदती है श्रौर सर्वथा तन्मय एवं तद्रूप हो जाती है।

सहृदय वाचक वृंद! आप कहेंगे कि यह तो भास पर इस प्रकार

लट्टू होगया जैसे पंडित पद्मसिंह शर्मा बिहारी पर और जैसे कुछ लोग कालीदास पर। हाँ, मित्रवर! यह बिलकुल ठीक है, और इस कथन का प्रत्येक अक्षर दिन के समान सत्य है।

किंतु हम, इस समय, भास की अन्य कवियों के साथ तुलनात्मक आलोचना करने का प्रयास नहीं करेंगे। यह काम तो तभी होगा, जब कि हमें महाकवि के संपूर्ण नाटकों को विज्ञ पाठकों के संमुख रखने का सौभाग्य प्राप्त हो जाएगा—और ईश्वर ने चाहा तो यह काम शीघ्र ही हो जाएगा। अस्तु।

हम ऊपर भास की प्रतिभा की प्रशंसा कर चुके हैं। अब ज़रा उसके कुछ नमूने भी देखिएगा।

दुर्योधन का विशाल यज्ञ हो चुका। यज्ञशाला में अग्नि लगा देने के कारण बाल-चपलता का प्रदर्शन होते ही, अग्नि-देव अपनी उदर-पूर्ति के लिए, चारों ओर सब वस्तुओं पर झपट-झपट कर, उनके स्थूल रूप को संसार से सर्वथा विलुप्त करने लगे। महाकवि की कल्पनामयी प्रतिभा ने इस दृश्य को भाँपा और लटकती हुई कुशाओं के द्वारा अग्नि में जलती हुई यज्ञ-शकटी को देखा और तत्क्षण ही निम्न-लिखित रूप में परिणत होगई:—

नव तृण जलाती, मंद जलती वह्नि छूकर दर्भ को,
कुरुराज की इस यज्ञ-शकटी के जलाती गर्भ को।
भड़की पवन से, उच्च लपटें, चक्र में आकर लगी,
अब नेमि के चहुँ ओर फिरती सूर्य के सम जगमगी॥

अब बताइए, भास-मुनि की प्रतिभा साक्षात् अग्निमय हो रही है कि नहीं? ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञ-शकटी साक्षात् आँखों के

सामने अग्नि में धाँय धाँय करके जल रही है और उसका जलता हुआ पहिया सूर्य के समान जगमगा रहा है !

वायु-विकंपित बाँस ये, जलते छू मख-ज्वाल ।
जाते जन के भाग्य ज्यों, नीचे औ उत्ताल ॥

यहाँ पर, ज़रा ध्यान से देखिएगा कि—कवि की प्रतिभा-बाला, वायु से झोंटे दिए गए बासों के झूले पर, किस प्रकार जगमग करती झूल रही है ! और देखिए,

'स्रुक्, अरणी, कुश-जाल का, करे अनल उपभोग ।
वसन, विभूषण का यथा, व्यसनी, निर्धन लोग ॥'

यहाँ मुनिवर भास की प्रतिभा-श्रुति कितना सुंदर एवं कल्याण-मय उपदेश दे रही है ! अनल स्रुक्, अरणी आदि यज्ञ-संबंधी वस्तुओं का इस प्रकार उपभोग कर रहा है, जैसे कि व्यसनी मनुष्य, निर्धन होकर, वस्त्र और आभूषण बेच-बेच कर अपना पेट भरने लगता है । क्या संसार में, किसी भी कवि की प्रतिभा-नटी ने, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करके, उनकी भक्ति के प्रसाद-स्वरूप उन्हें इतना सुंदर उपदेश दिया है ? प्राचीन काल में भारतीय रंग-मंच का क्या वास्तविक उद्देश्य था—इसका आभास हमें महाकवि की इस प्रकार की अनेक सूक्तियों से मिलता है । नाट्यशास्त्र में लिखा है कि—

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।
नानाभावोपसंपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ॥
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।
उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम् ॥

हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत् ।
दुःखार्तानां समर्थानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ॥
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम् ।
धर्म्यं यशस्य मायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।
न तच्छ्रुतं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ॥
नासौ योगो न तत्कर्म नाटके यन्न दृश्यते ॥
योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख दुःख समन्वितः ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥

अभिप्राय यह है कि "संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो नाटक में न दीखती हो । क्या विद्या, क्या कला, क्या शिल्प और क्या कोई काम सब कुछ नाटक में दीख पड़ता है । नाट्यकार कहते हैं कि यह नाट्य धर्म, यश और आयु को बढ़ाता है, और समाज के लिए अत्यंत सुंदर उपदेशक हैं । दुःखार्त, शोकार्त, समर्थ तथा तपस्वी—इन सबको समय पर शान्ति-प्रदान करता है । संसार के सब प्रकार के मनुष्यों का इसमें भावानुकीर्तन होता है । उनकी भिन्न भिन्न दशाएँ इसमें दिखाई जाती हैं । यह धर्म, क्रीड़ा और सुखादि को करने वाला है ।" सहृदय पाठक इससे भली भाँति पता लगा सकते हैं कि संस्कृत-नाटक-निर्माण का क्या वास्तविक उद्देश्य था । हमें पूर्ण विश्वास है कि नाट्य-शास्त्र में बताए गए हाथ-पैरों के अनेक प्रकार, अद्भुत भाव-भंगियाँ, नाट्य-शाला आदि की व्यवस्था तथा मन-मोहन सीन् बनाने की पटुता निःसंदेह अपूर्व थी, विचित्र थी और थी—आधुनिकों के सिर को नीचा दिखाने वाली ।

भास की चरित्र-चित्रण

अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में तो भास ने कमाल ही कर दिया है। सांसारिक दृष्टि-कोण से उनका दृष्टि-कोण सर्वथा विभिन्न है। हम कह चुके हैं कि—वे न तो किसी को संसार में सर्वथा उपेक्षणीय एवं तिरस्कार का भाजन ही समझते हैं और ना ही किसी को साक्षात भगवान् ही। 'प्रतिमा' नाटक में वे जहाँ राम की स्वर्गीयता का वर्णन करते हैं, वहाँ मर्त्य-लोक-संबंधी विचारों से भी उन्हें सर्वथा अछूता नहीं रखते। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि राम के चरित्र-चित्रण में कुछ त्रुटि है। राम का चरित्र आदर्श-रूप एवं सर्वथा अनुकरणीय है। किंतु, किसी भी प्राणी को सर्वथा भगवान्-रूप बता कर सर्व साधारण के चरित्र को उतना उन्नत नहीं बनाया जा सकता, जितना कि उनके-जैसे पुरुष की विशेषताओं को चित्रित करके उन्हें सत्पथ पर चलाया जा सकता है।

अपने इस निराले दृष्टि-कोण के कारण ही भास ने कैकेयी आदि के चरित्र को भी सर्वथा गर्हणीय एवं उपेक्षणीय नहीं रहने दिया है। अपनी प्रतिभा के बल पर उसमें भी उन्होंने स्पृहणीयता उत्पन्न कर दी है। बस, भास के और अन्य कवियों के दृष्टि-कोण में यही एक महान् अंतर है।

प्रस्तुत नाटक 'पंचरात्र' में भी महाकवि ने महाभारत के प्रतिकूल दुर्योधन तथा कर्णादि के चरित्र को भी स्पृहणीय एवं अनुकरणीय बना दिया है।

दुर्योधन का चरित्र-चित्रण

कवि ने, दुर्योधन के जीवन-रूपी चित्र-पट में, अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से किस चातुर्य से रंग भरकर, उसमें आकर्षण उत्पन्न कर दिया है, यह

देखने वाले ही जानते हैं।

यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन गुरु द्रोण से दक्षिणा माँगने के लिए कहता है। इस पर द्रोण दक्षिणा के स्थान पर एक विनती करने के लिए कहते हैं और उनकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं। यह देखकर भीष्म दुर्योधन से कहते हैं कि—'पुत्र! तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है।' दुर्योधन मुँह धोने के लिए जल मँगवाता है। इसका उत्तर द्रोण इस प्रकार देते हैं—'रहने दो, रहने दो; मेरी कार्य-सिद्धि ही मेरे मुँह को धोएगी।' इस अवसर पर दुर्योधन कहता है—'ओह! धिक्कार है मुझे!

प्रथम कुटिलता का ध्यान आता तुम्हें जो,
यदि निज मन में हो जानते 'मैं न दूँगा'।
शर-कठिन करों को तात! दोनों पसारो,
यह जल तजता मैं दान-स्वीकार-कारी॥'

गुरु द्रोण के दक्षिणा स्वीकार करने में विलंब करने पर दुर्योधन की उद्विग्नता तथा दक्षिणा देने के लिए उसकी प्रबल उत्कंठा का इससे अधिक अच्छा चित्र और कैसे खींचा जा सकता है! जो लोग अबतक दुर्योधन को सर्वथा निंदनीय, हृदय-शून्य, अविचारशील और उपेक्षणीय ही समझते रहे हैं, उनके इस प्रकार के विचारों पर भास की जादू-भरी तूलिका ने ऐसा गहरा रंग पोता है कि वे एकदम विलीन हो जाते हैं। एक स्थान पर तो भास-मुनि ने दुर्योधन के चरित्र को चित्रित करने में कलम ही तोड़ दी है। देखिए, नाटक के अंत में जब छद्म-वेषी भीमसेन विराट की गाएँ हरने के लिए आए हुए कौरव-दल के बीच में से अभिमन्यु को हर लाते हैं, तो मुनि जी दुर्योधन के हृदय के भावों को किस निराले ढंग से प्रकट करते हैं!—

'दुर्योधन—सारथि ! कहो, कहो । अभिमन्यु को कौन हर ले गया ? मैं ही उसे छुड़ाऊँगा । क्योंकि,

कुल-रिपुता इसके पितरों से मैंने ठानी,
दोष मुझे ही इससे देंगे सब जन ज्ञानी ।
किंतु प्रथम वह मम सुत, पीछे पांडवगण का,
कुल-विरोध में क्या कसूर है बालकजन का !॥'

कैसे पुनीत एवं स्वर्गीय उद्गार हैं ! भास ! तुम धन्य हो, मुनि हो, आदर्श के पुतले हो । तुम्हारा प्रत्येक अक्षर संसार के कल्याण के लिए, दिव्य आदर्श की निर्भरिणी बहा रहा है । अहो ! कविता-कामिनी की अलौकिक मुसकान तुम्हारे साथ ही विलुप्त होगई !

कर्ण का चरित्र-चित्रण

दुर्योधन के गुट्ट में शामिल होने के कारण महाभारत में कर्ण का चरित्र भी गर्हणीय ही-सा हो गया है । भास ने इनके चरित्र में भी स्पृहणीयता उत्पन्न करके एक प्रकार का आदर्श उपस्थित किया है ।

द्रोणाचार्य के, दक्षिणा में पांडवों को आधा राज्य देने की भिक्षा माँगने पर, जब दुर्योधन शकुनि के साथ सलाह कर रहा था तो वह कर्ण को चुप देखकर कहता है—'मित्र अंगराज ! आपने अभी कुछ नहीं कहा !' देखिए, कर्ण इसका क्या उत्तर देते हैं:—

'कर्ण—मैं अब क्या कहूँगा !

श्रीराम ने जिसका प्रथम अनुभव तथा पालन किया,
प्रतिषेध उस सौभ्रात्र का करता नहीं मेरा हिया ।

'राज्यार्द्ध देना चाहिए अथवा न' आप प्रमाण हैं,
समर-स्थली में बस सहायक ये हमारे प्राण हैं॥'

कितना संक्षिप्त उत्तर है, किंतु कितना सहृदयता-पूर्ण !

और लीजिए, अभिमन्यु के बंदी होजाने पर कर्ण दुर्योधन से क्या कहते हैं—'गांधारी-पुत्र !

स्व-जन-भीति से, पुत्र-प्रेम से मत तुम ठानो—
उसे छुड़ाने की, निज-हित रण-बंदी जानो।
रक्षित वह अभिमन्यु नहीं हा, हमसे अपना,
धारो वल्कल, त्याग धनुष का अब तो सपना॥'

कैसी मधुर एवं तीक्ष्ण भर्त्सना है ! पवित्र, निश्छल, प्रेममय एवं कर्तव्य-परायण हृदय का कैसा विह्वल दृष्टांत है !

महाभारत का सब से जघन्य, घृणित एवं उपेक्षणीय समझा जाने वाला अब केवल एक ही पात्र रह जाता है, और वह है शकुनि। यद्यपि वास्तविकता को परखने वाले कवि ने उसके चरित्र में स्पृहणीयता एवं अनुकरणीयता उत्पन्न नहीं की और उलटा उसे अपराधी ही ठहराया है, किंतु फिर भी—संसार में कोई प्राणी निरा बुरा ही होता है और वह कभी भी सहृदय नहीं हो सकता—इस लोक-वाद को वे नहीं सह सके। अभिमन्यु के बंदी हो जाने पर, देखिए, मुनि जी शकुनि के मुँह से क्या कहलाते हैं:—

'अर्जुन-सुत—यह जान विराट नरेश्वर तज दे !
रण-बंदी उसे—याद कर दामोदर तज दे !
तज दे कुपित हली से अथवा भय खा के !
बली भीम वा ले आप, कर अरि-वध जा के !'

यहाँ पर शकुनि के गुणज्ञ हृदय का स्पष्ट आभास मिलता है। यद्यपि महाकवि ने भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, अभिमन्यु, विराट तथा उत्तर आदि सभी नाटकीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में अद्भुत चातुर्य का परिचय दिया है, किंतु इनके विषय में विस्तार के भय से हमें यहाँ कुछ नहीं कहना। फिर भी अभिमन्यु और उत्तर इन दो राजकुमारों के विषय में हमसे बिना कुछ कहे नहीं रहा जाता।

अभिमन्यु का चरित्र-चित्रण

सहृदयगण! यदि आप भास की तूलिका की स्वच्छ एवं मधुर छवि का साक्षात् दर्शन किया चाहते हैं, तो आप अभिमन्यु के चरित्र को पढ़ें। देखिए, महाकवि अथवा चतुर चितेरे ने, उसके चरित्र को चित्रित करने में कैसे छविमय रंग भरे हैं! बंदी अभिमन्यु के साथ छद्म-वेषी भीम और अर्जुन बातचीत कर रहे हैं। वे दोनों उसे उसका नाम लेकर पुकारते हैं और उसकी माता का कुशल-समाचार पूछते हैं। इस पर अभिमन्यु अत्यंत क्रुद्ध होता है, और कहता है:—

अभिमन्यु—क्यों, क्यों! माता के विषय में पूछते हो?

धर्मराज क्या भीम तुम, अथवा अर्जुन तात।
पितृ-सम स्वर में पूछते, जो मुझसे स्त्री-बात॥'

बृहन्नला-वेष-धारी अर्जुन फिर देवकी-पुत्र कृष्ण का मंगल-समाचार पूछ बैठते हैं। अभिमन्यु इसका 'क्यों, उनका भी नाम लेते हो? जी, हाँ! जी, हाँ! कुशलपूर्वक है—आपका बंधु!'—इस प्रकार व्यंगपूर्वक उत्तर देता है। इस पर भीम और अर्जुन दोनों हँस देते हैं। अभिमन्यु इस हँसी को सहन न करके कहता है:—

'अभिमन्यु—आप लोग, क्या अब मेरी हँसी उड़ा रहे हैं?

बृहन्नला—क्या कुछ भी कारण नहीं ?

पार्थ जनक, मातुल तथा मधुसूदन, सुकुमार !
अस्त्र-निपुण क्या युवक की समुचित रण में हार ? ॥'

यह सुनकर अभिमन्यु भभक उठता है और निम्न-लिखित उत्तर देता है:—

'**अभिमन्यु**—बंद करो—व्यर्थ की बकवाद !

निज स्तुति करना है नहीं, कुल में मम सौजन्य ।
शव-गण में शर-गण लखो, नाम न होगा अन्य ॥'

कितनी अपूर्व वीरता है ! कितना गौरव है ! शौर्य का ज्वालामुखी किस प्रकार फूटा चाहता है ! ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् मूर्तिमान् पराक्रम सामने ऐंठ रहा हो ! विश्व की संपूर्ण शक्ति को एक स्थान पर केंद्रित कर दिया गया हो ! अथवा पाँचों महाभूतों के गुणों को लेकर विधाता ने अकस्मात् एक अनोखी, गौरवमयी, तरलतामयी, दीप्तिमयी, स्फूर्तिमयी एवं लाघवमयी प्रतिमा में प्राणों का संचार कर दिया हो ! अथवा सारयुक्त एवं वीरतामय मधुर अभिमान को देह प्रदान कर दिया हो !

अभिमन्यु कैदी की दशा में राजा विराट के आगे उपस्थित होता है । किंतु वह राजा को अभिवादन नहीं करता । उसके इस व्यवहार से उत्तेजित होकर विराट सहसा कह उठते हैं कि—'अहो ! यह क्षत्रिय-कुमार सचमुच बड़ा घमंडी है ! अच्छा, मैं इसके गर्व को ठंडा करूँगा । अच्छा तो इसे किसने पकड़ा है ?' भीमसेन एकदम बोल उठते हैं कि—'महाराज ! मैंने ।' 'शस्त्र-हीन ने—यह कहो'—अभिमन्यु कड़क कर उत्तर देता है । इस पर राजा अभिमन्यु के प्रति कुछ करुणा

का-सा भाव प्रकट करते हैं । किंतु, उसे यह सह्य नहीं हो सका और कह उठता है—'यदि मुझ पर अनुग्रह ही करना है, तो—

बंदी-समुचित बेड़ी मेरे
चरण-युगल में तुम डालो ।
ले जाएगा भीम भुजा से
हे भुज से हरने वालो !'

कितनी निरुपम निर्भीकता है ! भय किस चिड़िया का नाम है—यह उसे पता ही नहीं ! दैन्य क्या वस्तु है—इसका उसे तनिक भी ज्ञान नहीं । शत्रु के आगे सिर झुकाना उस बालक ने सीखा ही नहीं, और सिर झुकाता भी कैसे !—'कुल-युग-तेज अनन्य' जो ठहरा ! भगवान् करे, भारत के वर्तमान बालक भी ऐसे ही बनें ।

उत्तर का चरित्र-चित्रण

उत्तर का चरित्र-चित्रण महाकवि ने किस खूबी से किया है, यह देखते ही बनता है। मनुष्य का स्वभाव है कि जो काम वह स्वयं नहीं कर सकता, यदि कोई दूसरा आदमी उसके नाम पर वह काम कर दे और उसके कारण जो उसे बड़ाई मिले, तो वह फूला नहीं समाता । और अपना उत्कर्ष दिखाने के लिए वह उस रहस्य को केवल छिपाता ही नहीं, अपितु जबतक भी उससे लाभ उठा सके तबतक पूरा पूरा लाभ उठाने के अनेक उपाय करता रहता है । वह ढीठ एवं निर्लज्ज दूसरों को धोखे में रखने में ही अपनी इतिश्री समझता है—यद्यपि कुछ ही काल बाद पोल खुल जाने पर उसकी सारी आनंद-क्रियाएँ किरकिरी हो जाती हैं । उत्तर भी यदि चाहता, तो कुछ काल तक, कौरवों पर विजय

प्राप्त करने के सम्मान का खूब आनंद लूट सकता था। किंतु, हमारे कवि को इस प्रकार की सर्वथा आदर्श-हीन बातें कब सह्य थीं ! देखिए, वे उत्तर के मुँह से ऐसे समय पर क्या कहलवाते हैं:—

'मिथ्या-प्रशंसा अति कष्ट देती
मिथ्या-प्रशंसा-रत बंदियों की।
देते मुझे ये रण की बड़ाई,
देता हुँकारी, मन में लजाता॥'

कैसे स्वर्गीय विचार हैं ! कितनी अलौकिकता है ! विनय की कैसी पराकाष्ठा है ! राजकुमार उत्तर के हृदय में सांसारिक जीवों के प्रतिकूल ज़रा भी झूठी बड़ाई पाने की इच्छा नहीं। वे लज्जा से गड़े जा रहे हैं। और सचाई को प्रकट करने के लिए अत्यंत उद्विग्न हो रहे हैं। ये हैं महाकवि भास की प्रतिभा के कुछ नमूने, जिन्हें कि विज्ञ पाठकों के संमुख उपस्थित करते हुए हमारी असमर्थ लेखनी लजाती है। किंतु भास की कविता में कुछ ऐसी संमोहनी छिपी हुई है कि जिसके वश होकर उसे अपनी असमर्थता का वास्तविक ज्ञान ही नहीं हो पाता। यही कारण है कि वह दुःसाहस कर ही बैठी है।

भास की सूक्ष्म-दर्शिता

यज्ञ की समाप्ति पर जब सब राजा लोग दुर्योधन को बधाई दे रहे थे, तो विराट पुर से राजा विराट का दूत आकर यह समाचार सुनाता है कि—'रात्रि में किसी शस्त्र-हीन ने सौ कीचकों को मार डाला।' भीष्म द्रोण से कहते हैं कि यह काम सिवाय भीम के और कोई नहीं कर सकता। इस पर द्रोण पूछते हैं कि—आपने यह कैसे जाना ? भीष्म इसका क्या उत्तर देते हैं, ज़रा महाकवि के शब्दों में ही सुनिएगा:—

'क्यों, बछड़ों की चपलता, करते तीर-विहार।
महावृषभ जानें न बुध! उनका शृंग-प्रहार?॥'

भला, तीर-विहारी बछड़ों की चपलता तथा उनका शृंग-प्रहार कभी महावृषभों से छिप सकता है! कवि की सूक्ष्म-दर्शिता का इससे सुंदर उदाहरण और क्या हो सकता है!

भास का युद्ध-वर्णन

भास के युद्ध-वर्णन के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। 'स्थाली-पुलाक' न्याय से एक ही पद्य में पाठकों को उसका पता लग जाता है। बृहन्नला-वेष-धारी अर्जुन को कारवों के साथ भयंकर युद्ध-तांडव को सचमुच राजकुमार उत्तर का रण-तांडव समझकर भट उसका वर्णन राजा विराट के सामने इस प्रकार करता है:—

'शर मार सौ सौ नील हाथी लाल रंग में हैं रंगे,
है कौन हय भट वा, न जिसके बाण सौ तन में लगे!
शर-विद्ध रथ-वर हैं हुए शर-जाल से निश्चल अहा,
पथ रुद्ध बाणों से, धनुष शर-धार उग्र बहा रहा॥'

वर्णन क्या है, जादू है! कवि की चंचल प्रतिभा कैसा अपूर्व एवं भैरव नृत्य कर रही है! कैसा निरालापन है! ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् आँखों के आगे कोई धन्वी बाणों की धारा इस प्रकार बहा रहा है—मानों—ग्रीष्म-काल का मध्याह्न-मार्तंड अपनी अनंत किरणों से जीव-लोक को उत्तप्त कर रहा हो! सैकड़ों हाथी खून में लथपथ हुए लौट रहे हैं। कोई भी घोड़ा अथवा योद्धा ऐसा नहीं, जिसका शरीर सैकड़ों बाणों से न बिंधा हो। शत्रुओं के रथ बाणों से विद्ध होकर निश्चल हो रहे हैं। मार्ग बाणों से रुक गया है और धनुष भीषण

शर-धारा बहा रहा है। धन्वी क्या है, मानों प्रलयकालीन सहस्रांशु बिगड़ बैठा है !

भास का स्वाभाविक वर्णन

कौरव राजा विराट की गाएँ हरे ले जा रहे हैं। भट, अकस्मात्, यह समाचार राजा के पास पहुँचाता है और गो-हरण का वर्णन इस प्रकार करता है:—

'हैं भग रहे बछड़े तथा हैं पा रहीं गाएँ व्यथा,
हा! साँड लख लख हो रहे भयभीत-मुख हैं सर्वथा।
इस भाँति हाहाकार चारों ओर गो-कुल कर रहा,
हा! शोचनीय बना यहाँ दुख-जलधि में है तर रहा॥'

कितना मार्मिक वर्णन है ! ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् करुणा की मंदाकिनी शिला-खंडों से टकराकर भैरव शब्द करती हुई, अविश्रांत रूप से बही जा रही हो ! इस वर्णन को पढ़कर आँखों के आगे साक्षात् वही दृश्य नाचने लगता है।

भास का स्वर्ग

कुछ लोगों के विचार के प्रतिकूल स्वर्ग के विषय में भी भास का दृष्टि-कोण कुछ जुदा है। देखिए, दुर्योधन के मुँह से वे इस विषय पर किस तरह प्रकाश डालते हैं—

'संतुष्ट हैं मुझ से हुए गुरुजन, हृदय श्रद्धा-पगा,
विश्वस्त जन, गुण-सदन हूँ, सारा अयश मेरा भगा।
'नर प्राप्त करते स्वर्ग मर कर' झूठ कहता लोक है,
हैं मर्त्य जिसको भोगते, विस्तृत यहाँ सुर-लोक है॥'

भास के इस कथन की पुष्टि कविता-कामिनी-विलास महाकवि कालिदास इस प्रकार करते हैं:—

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः
पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।

ब्रह्मचारी के वेश में पार्वती की परीक्षा लेने के लिए आए हुए शिव पार्वती से कहते हैं कि—'हे देवी ! यदि तुम्हें स्वर्ग की कामना है, तो यह भयंकर व्रत वृथा है । क्योंकि तुम्हारे पिता—हिमालय—के प्रदेश ही तो स्वर्ग-स्थान हैं ।'

अधिक क्या कहें, एक विद्वान् समालोचक के शब्दों में—'मिश्री का यह कूजा जिधर से तोड़ो मीठा ही निकलता है । इस गन्ने की हर पोरी में मिठास बढ़ता ही जाता है । भाव, भाषा और कला किसी भी दृष्टि से देखो भास की कृति अपने जैसी आप ठहरती है,—संक्षेप में इतना ही कह देना पर्याप्त है ।

संस्कृत-सागर में निमग्न इस अप्रतिम एवं अमूल्य रत्न को हिन्दी जनता के करकमलों तक पहुँचाने में हम कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही करेंगे ।

लाहौर
जन्माष्टमी १९९१

—बलदेव

नाटक की कथा

द्रोण एवं भीष्म की प्रेरणा से कुरुराज दुर्योधन गंगा के किनारे किसी पुण्य वन में विशाल यज्ञ रचता है। पृथिवी भर के सारे राजा लोग, राजकुमारों एवं राज-रानियों के साथ उसमें सम्मिलित होते हैं। यज्ञ के दर्शनार्थ आए हुए ब्राह्मण दुर्योधन के यज्ञ-वैभव से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। यज्ञ के अंत में यज्ञशाला में अग्नि-संदीपन होता है। दुर्योधन यज्ञ-दीक्षांत-स्नान करता है। यज्ञ करने के कारण उसका मन प्रशांत होजाता है, जिससे कि द्रोण और भीष्म को महान संतोष होता है। भीष्म और द्रोण तथा देश देशांतरों से आए हुए राजा दुर्योधन को बधाई देते हैं। अंत में वह द्रोण से दक्षिणा के लिए याचना करता है। बार बार प्रार्थना करने पर भी जब द्रोण दक्षिणा के लिए टाल-मटोल करते रहते हैं, तो दुर्योधन उन्हें विश्वास दिलाने के लिए उनके कर-कमल में जल-दान कर देता है, जिससे कि द्रोण के

मन में दक्षिणा के प्रति विश्वास हो जाता है और वे पांडवों का आधा राज्य दे देने की दक्षिणा माँग बैठते हैं।

भला, शकुनि को यह कब सह्य था! वह यह सुनते ही भभक उठता है और आचार्य पर दक्षिणा के बहाने धोखा देने का लांछन लगाता है। द्रोण को भी क्रोध आजाता है और वे कहते हैं कि—"ए गांधार देश का राज्य पाकर गर्व में चूर हुए शकुनि! तुम अनार्य हो, इसलिए क्या सारे संसार को अनार्य समझते हो? ओह! क्या, बंधुओं का पैतृक राज्य देने के लिए कहना भी धोखा है?" भीष्म और कर्ण युक्तिपूर्वक द्रोण और शकुनि को शांत करते हैं। दुर्योधन, शकुनि के साथ सलाह करने के अनंतर, यदि "पंचरात्र—(पाँच रात्रियों)—के भीतर भीतर आप पांडवों का पता लगा लेंगे, तो मैं उन्हें उनका आधा राज्य लौटा दूँगा"—यह निर्णय सुना देता है।

यह सुनकर द्रोण अत्यंत चिंतित होते हैं और दुर्योधन से कहते हैं कि—

'तुमने छल-काम है लखा—
जिनको बारह वर्ष से नहीं।
फिर क्योंकर 'पंच-रात्र' में!
कह देते इससे 'नहीं' यही ॥'

ठीक इसी समय विराट के पास से दूत आजाता है और वह बिना शस्त्र ही सौ कीचकों के मारे जाने का समाचार सुनाता है। भीष्म एकदम ताड़ जाते हैं कि हो-न-हो यह

काम भीमसेन का है, क्योंकि विना हथियार और किसमें इतनी शक्ति है जो कीचकों को मार सके! इसलिए वे द्रोण से एक ओर को कहते हैं कि—'पंच-रात्र' की अवधि स्वीकार कर लेनी चाहिए।

अपने निकट के संबंधी कीचकों की मृत्यु के कारण शोक से विह्वल हुए महाराजा विराट दुर्योधन के यज्ञ में सम्मिलित नहीं हो सके थे। उनके इसी अपराध के वहाने, भीष्म अपनी कार्य-सिद्धि का ध्यान रखते हुए, दुर्योधन को उनकी गाएँ हरने के लिए भड़का देते हैं। परिणाम-स्वरूप दुर्योधनादि विराट की गाएँ हर लेते हैं।

यह समाचार पाते ही राजकुमार उत्तर, बृहन्नला को रथ का सारथि बना, कौरवों से युद्ध कर गाएँ छुड़ाने को निकल पड़ता है। बृहन्नला को राजकुमार के रथ का सारथि सुनकर राजा को बड़ी चिंता हो जाती है। ब्राह्मण-वेष-धारी युधिष्ठिर 'बृहन्नला की सारथ्य-विद्या के प्रभाव से विजय अवश्य होगी' यह कहकर राजा की चिंता को दूर कर देते हैं।

कुछ ही देर बाद राजा विराट को यह समाचार मिलता है कि राजकुमार उत्तर कौरवों को परास्त कर आगए हैं, और कौरवों की सहायता के लिए आए हुए अभिमन्यु को राजा के रसोइए ने (जो कि कपट-वेष-धारी भीमसेन थे) पकड़ लिया है। राजा को यह सब सुनकर बड़ा कौतूहल होता है और वे अभिमन्यु को शीघ्र ही लिवा लाने के लिए कहते हैं। भगवान् (अर्थात् ब्राह्मण-वेष-धारी युधिष्ठिर) की

प्रेरणा से बृहन्नला (अर्थात् कपट-वेष-धारी अर्जुन) को अभिमन्यु को लिवा लाने के लिए भेजा जाता है । इस मौके पर कपट-वेष-धारी भीमसेन और अर्जुन की अभिमन्यु के साथ बातचीत, लीलाक्षेप वचनों से परिपूर्ण होने के कारण, अत्यंत रोचक होगई है । बृहन्नला—अर्थात् कपट-वेष-धारी अर्जुन—सूद-वेष-धारी भीमसेन के साथ अभिमन्यु को राजा के पास लिवा लाते हैं ।

इतने में ही राजकुमार उत्तर सहसा आकर—'बृहन्नला-वेष-धारी अर्जुन ने ही कौरवों को जीता है'—इस रहस्य का उद्घाटन कर देता है । फिर अर्जुन कपट-वेष-धारी युधिष्ठिर और भीमसेन की वास्तविकता प्रकट कर देते हैं । विराट प्रसन्न हो अर्जुन को गो-हरण के पारितोषिक-रूप में अपनी कन्या उत्तरा के पाणिग्रहण के लिए कहते हैं, किंतु अर्जुन,

'किया सभी रनवास का, जननी-सम सत्कार ।
अर्पित जो यह उत्तरा, सुत-हित है स्वीकार ॥'

यह कहकर उसे अभिमन्यु के लिए स्वीकार कर लेते हैं । युधिष्ठिर, संपूर्ण राज-मंडल को विवाह का निमंत्रण देने के लिए, उत्तर को शीघ्र ही भीष्मादि के पास भेज देते हैं ।

इधर कौरवों के पराजित हो जाने पर जब भीष्मादि को अभिमन्यु के सारथि से यह पता लगा कि अभिमन्यु को एक अत्यंत वेग-शाली पैदल पकड़कर भाग गया, तो उन्हें निश्चय हो जाता है कि अभिमन्यु को भीमसेन के सिवाय और किसी ने नहीं पकड़ा । इसी समय भीष्म का सारथि

भी भीष्म की ध्वजा पर लगे हुए बाण को लेकर आजाता है और भीष्म की आज्ञा से शकुनि उस पर 'अर्जुन' नाम पढ़ कर उसे फेंक देता है और कहता है कि—अर्जुन नाम का कोई दूसरा योद्धा हो सकता है जिसका कि यह बाण हो: इसलिए उत्तर से इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए। इतने में ही राजकुमार उत्तर युधिष्ठिर का संदेश लेकर आ जाता है। इस प्रकार, पांडवों का 'पंचरात्र' के भीतर ही पता लग जाने पर, दुर्योधन उनको उनका आधा राज्य दे देता है।

नाटक के पात्र

दुर्योधन	...	हस्तिनापुर का राजा
कर्ण	...	अंगदेश का राजा—दुर्योधन का मित्र
भीष्म	...	कौरवों के पितामह
द्रोण	...	कौरवों के आचार्य
भगवान्	...	ब्राह्मण-वेष-धारी महाराज युधिष्ठिर
अर्जुन	...	युधिष्ठिर का भाई
बृहन्नला	...	नपुंसक-वेष-धारी अर्जुन
भीमसेन	...	युधिष्ठिर का भाई
राजा	...	विराट नामक मत्स्य देश का राजा
उत्तर	...	विराट का पुत्र
अभिमन्यु	...	अर्जुन का पुत्र
भट	...	दुर्योधन तथा विराट का भृत्य
सारथि	...	विराट, अभिमन्यु और भीष्म का रथ-वाहक
शकुनि	...	दुर्योधन का मामा
दूत	...	विराट का संदेश-वाहक
वृद्ध गोपालक	...	गोकुल का अध्यक्ष
गोमित्रक	...	एक ग्वाला
कंचुकी	...	विराट का भृत्य
प्रथम	...	यज्ञ के दर्शनार्थ आए हुए तीन ब्राह्मण
द्वितीय	...	यज्ञ के दर्शनार्थ आए हुए तीन ब्राह्मण
तृतीय	...	यज्ञ के दर्शनार्थ आए हुए तीन ब्राह्मण

पंचरात्र

(नांदी के अंत में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—

भीमार्जुन सब पांडव-दल का, पृथिवी-हित जो दूत ।
कर्णधार जो शुकुनीश्वर का, द्रोण महा अवधूत ॥
भीष्म, युधिष्ठिर, उत्तर-पथ-चर, यदुकुल का सम्राट ।
दुर्योधन, अभिमन्यु करे वह, रक्षा कृष्ण विराट ॥१॥

(घूमकर) आर्य-जनों से मेरा यह निवेदन है !—अये ! क्या कारण है कि मेरे सूचना देने के लिए तत्पर होते ही

शब्द-सा सुनाई पड़ रहा है ! अच्छा, अभी देखता हूँ !

(नेपथ्य में)

क्या कहना है—कुरुराज की यज्ञ-समृद्धि का !

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया ।

आए नृप सप्रेम सब, नारी परिजन बाल ।
दुर्योधन कुरुराज का, होता यज्ञ विशाल ॥२॥

(प्रस्थान)

स्थापना

पहला अंक

(तीन ब्राह्मणों का प्रवेश)

सब—क्या कहना है—कुरुराज की यज्ञ-समृद्धि का !

पहला—यहाँ, सचमुच,

द्विज-शेष मानों अन्न से सब ओर काश खिले हुए,
हैं दीखते हवि-धूम ये तरु-कुसुम-गंध-मिले हुए।
चीते हरिण-सम घूमते, गिरि-सिंह हिंसा-हीन है,
दीक्षित नृपति के साथ मानों लोक दीक्षा-लीन है ॥३॥

दूसरा—आप ठीक कहते हैं।

सुर-मुख अनल है तृप्त हवि से, तृप्त धन से विप्र भी,
पशु-पक्षि-आदिक तुष्ट हैं सब, तुष्ट जग के जन सभी।
गुण-गान करता नृप-गुणों का हृष्ट सब संसार है,
इस भाँति सुर-आवास को भी दे रहा धिक्कार है ॥४॥

तीसरा—ये पूजनीय ब्राह्मण हैं,

नृप-मौलि-वंदित चरण जिनके, जो पढ़े सब शास्त्र हैं,
जो वेद पढ़ते वृद्ध भी तप से तपाते गात्र हैं।
ये विप्र, जो दुर्बल जरा से यष्टि लेकर जा रहे—
धर हाथ शिष्य-स्कंध पर, अति-वृद्ध-गज-छवि छा रहे ॥५॥

सब—ऐ ब्रह्मचारियो! ऐ ब्रह्मचारियो! जब तक यज्ञ-दीक्षांत-स्नान समाप्त न हो जाए, यज्ञ-शाला में आग मत देना।

पहला—ओह! बाल-चपलता दिखाई ही दी!

यह यूप से—जलते कनकमय बाहु से शोभित मही,
यज्ञाग्नि लौकिक-अग्नि को, द्विज शूद्र-सम, सहती नहीं।
कुछ कुछ हरित कुश-जाल से आच्छन्न वेदी-तल जला,
यह धूम, ज्यों गज विकच-नलिनी-ओर, प्राग्गृह को चला ॥६॥

दूसरा—यह ठीक है।

अनल के भय से भयभीत हो,
अनल को द्विज-श्रेष्ठ निकालते।
चरित-हीन यथा कुल से करें—
पृथक बंधु, न संक्रम-दोष हो ॥७॥

तीसरा—यह और देखें आप लोग,

शकटी यह घृत से भरी, सिंचित भी-जल-जाल—
जलती, मृत-बाला यथा, तप्त स्नेह से-बाल ॥८॥

पहला—आप ठीक कहते हैं,

नव तृण जलाती, मंद जलती वह्नि छूकर दर्भ को,
कुरुराज की इस यज्ञ-शकटी के जलाती गर्भ को।
भड़की पवन से, उच्च लपटें, चक्र में आकर लगी,
अब नेमि के चहुँ ओर फिरती सूर्य के सम जगमगी ॥९॥

दूसरा—यह और देखें आप लोग,
बाँबी-बिल से साथ ही निकले पाँच भुजंग—
अनल-भीत, पाँचों यथा इंद्रिय तज मृत-अंग ॥१०॥

तीसरा—यह और देखें आप लोग,

पवन-दीप्त यज्ञाग्नि से, जलता वृक्ष महान।
कोटर-गत ये निकलते, खग-गण प्राण-समान ॥११॥

पहला—यह ठीक है।

नीरस पादप एक ही, कुसुमित विपिन-प्रांत—
चरित-हीन कुल को यथा, करना दग्ध नितांत ॥१२॥

दूसरा—

वायु-विकंपित बाँस ये, जलते छू मख-ज्वाल।
जाते जन के भाग्य ज्यों, नीचे औ उत्ताल ॥१३॥

तीसरा—आप ठीक कहते हैं।

शुष्क लता से स्कंध में, वेष्टित विटपि महान—
दुष्कुल में स्त्री-दोष से, जलता साधु-समान ॥१४॥

पहला—यह और देखें आप लोग,

यह वन, युत झाड़ी वृत्त गुल्मावली से,
अशन अनल मानों खूब खा, तृप्त होके,
अब कुश-गण का ले कूलवर्ती सहारा,
सरित-निकट मानों आ गया अंबु पीने ॥१५॥

दूसरा—यह, यह,

फैले हुए कुश चीर से प्रतिवृत्त पर है जा रहा,
मानों पका, हो दग्ध, कदली-फल धरा पर आ रहा!
है ताल यह संमुख, लटकता मधु-पटल जिस पर अहा,
निज मूल जलते ही परशु-सम रुद्र के है गिर रहा ॥१६॥

तीसरा—अहा ! सत्पुरुष के क्रोध के समान, भगवान् 'हुताशन' शांत हो गया !

जलते ही सब वस्तु के, अनल हुआ यह शांत ।
दान-शक्ति ज्यों आर्य की, धन-क्षय-क्षीण नितांत ॥१७॥

पहला—

स्रुक, अरणी, कुश-जाल का, करे अनल उपभोग ।
वसन, विभूषण का यथा, व्यसनी निर्धन लोग ॥१८॥

दूसरा—

यह कूलवर्ती ढाक, जिसकी शाख जल को छू रही,
यह वायु से हिलता हुआ मृदु हस्त जिसका पर्ण ही ।
हैं खो चुके जो प्राण अपने वन-अनल के वश अहा,
उन पादपों को ही यहाँ मानों जलांजलि दे रहा ॥१९॥

तीसरा—तो आइएगा, हम भी आचमन कर लें !

(सब विधिपूर्वक आचमन करते हैं)

पहला—अये ! ये महाराज कुरुराज दुर्योधन, भीष्म और द्रोण जिनके आगे आगे हैं, संपूर्ण राज-मंडल के साथ इधर ही चले आ रहे हैं । देखो, ये—

'मख से करो जग तृप्त, बल से मेदिनी को जय करो,
तज क्रोध नृप ! निज बंधु-जन के दुःख को सत्वर हरो'-
इस भाँति सुंदर वचन कहते पौर-जन अति दत्त हैं,
यों ले रहे अब पांडवों का ही अहो ! ये पत्त हैं ॥२०॥

दोनों—बहुत अच्छा !

सब—जय हो, जय हो देव की ।

(सब का प्रस्थान)

विष्कंभक

(भीष्म तथा द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—यज्ञानुष्ठान करके दुर्योधन ने सचमुच मेरे ही सम्मान को बढ़ाया है ! क्योंकि,

तज निज जन को भी, छोड़ के मित्र को भी ,
गुरु-सिर मढ़ते हैं शिष्य का दोष सारा ।
जनक जननि दोनों बाल्य से सौंप देते-
निजसुत गुरु को ही, दोष-भागी नहीं वे ॥२१॥

भीष्म—यह दुर्योधन,

सुवर्ण, चाँदी हर जो हुआ धनी,
अकीर्ति युद्ध-प्रिय है जिसे मिली।
सु-पुण्य-भागी कर यज्ञ जो हुआ,
वही सुहाता इस पुण्य वेश में ॥२२॥

(दुर्योधन, कर्ण तथा शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—

संतुष्ट हैं मुझ से हुए गुरु-जन, हृदय श्रद्धा-पगा,
विश्वस्त जन, गुण-सदन हूँ, सारा अयश मेरा भगा।
'नर प्राप्त करते स्वर्ग मर कर' झूठ कहता लोक है,
हैं मर्त्य जिसको भोगते, विस्तृत यहाँ सुर-लोक है ॥२३॥

कर्ण—गांधारी-पुत्र! न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धन को दान करके आपने उचित ही किया है! क्योंकि,

है प्राप्त करता समर से संपत्ति को क्षत्रिय यहाँ,
धन पुत्र के हित जोड़ता जो फल उसे मिलता कहाँ!
सब विप्र की ही गोद में धन भेंट करके इसलिए,
नृप को सदा निज-पुत्र-कर में चाप देना चाहिए ॥२४॥

शकुनि—गंगा-जल में विधिपूर्वक आचमन करने के कारण शुद्ध देह वाले अंगराज ठीक कहते हैं।

कर्ण—

इक्ष्वाकु, शर्य्याति, ययाति, राम,
मांधातृ, नाभाग, नृग, ऽम्बरीष।
स-कोश ये राष्ट्र-समेत राजा-
सभी मरे, जीवित यज्ञ से हैं ॥२५॥

सब—गांधारी-पुत्र! सौभाग्य से, यज्ञ समाप्त हो जाने के कारण आपकी वृद्धि हो रही है।

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ। गुरु जी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

द्रोण—आओ, आओ, पुत्र! यह क्रम नहीं है।

दुर्योधन—तो कौन-सा क्रम है?

द्रोण—क्या आप नहीं जानते?

मनुज-रूप में देवता, इनको करो प्रणाम।
छोड़ भीष्म मम वंदना, ठीक नहीं यह काम ॥२६॥

भीष्म—नहीं, आप ऐसा न कहें! मैं अनेक कारणों से आपकी अपेक्षा निकृष्ट हूँ। क्योंकि,

तुम हो स्वयंभू और मैं उत्पन्न जननी से तथा,
है शस्त्र मम आजीविका, जग-प्रेम-रत तुम सर्वथा।
है क्षत्र-कुल में जन्म मेरा, आप ब्राह्मण-श्रेष्ठ हैं,
हैं आप गुरु सब के तथा हम शिष्य-कुल के ज्येष्ठ हैं ॥२७॥

द्रोण—महात्मा लोग अपने को निकृष्ट कहने का साहस कर ही बैठते हैं ! आओ, पुत्र ! मुझे प्रणाम करो ।

दुर्योधन—गुरु जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

द्रोण—आओ, आओ, पुत्र ! तुम इसी प्रकार यज्ञ-दीक्षांत-स्नानों में खेद प्राप्त करते रहो !

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । बाबा जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भीष्म—आओ, आओ, पौत्र ! तुम्हारा मन इसी प्रकार सदा प्रशांत रहे !

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । मामा जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

शकुनि—वत्स !

इस प्रकार कर यज्ञ सब, दानसहित स्वच्छंद ।
नृप-मख में नृप जीत कर, जरासंध सम बंद ॥२८॥

द्रोण—ओह ! आशीर्वाद के समय में भी शकुनि युद्ध के लिए उत्तेजित कर रहा है ! अहो ! यह क्षत्रिय-कुमार सचमुच वैर का बड़ा प्रेमी है !

दुर्योधन—मित्र ! कर्ण ! गुरुजनों को प्रणाम करने के अनंतर अब हमारी बारी आई है; आओ, दोनों मित्र गले मिल लें ।

कर्ण—गांधारी-पुत्र !

यह यज्ञ-व्रत से कृश कलेवर है तुम्हारा हो रहा !
क्या गाढ आलिंगन करूँ, यदि जा सके तुम से सहा !
बोले विना सप्रेम अब पीड़ित हृदय कैसे करूँ !
राजर्षि-तुल्य प्रशांत स्वर से भीत, भय कैसे हरूँ ! ॥२९॥

दुर्योधन—तुम्हारा मन सदा ऐसा ही बना रहे !

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! ये इंद्र के प्रिय मित्र भीष्मक आपको बधाई देते हैं।

दुर्योधन—स्वागत है, आर्य का। अभिवादन करता हूँ।

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! ये दक्षिण देश के रक्षक भूरिश्रवा आपको बधाई देते हैं।

दुर्योधन—स्वागत है, आर्य का।

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! ये अभिमन्यु, जिन्हें आपको बधाई देते हुए श्रीकृष्ण जी ने भेजा है, आपको बधाई देते हैं।

शकुनि—वत्स ! दुर्योधन ! ये जरासंध के पुत्र सहदेव आपको अभिवादन करते हैं।

दुर्योधन—आओ, आओ, वत्स ! पिता के समान पराक्रमी बनो !

सब—यह संपूर्ण राज-मंडल आपको बधाई देता है।

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ। क्यों !—सब राजाओं के आने पर विराट क्यों नहीं आए ?

शकुनि—मैंने उनके पास दूत भेजा था। संभव है, बीच-मार्ग में हों !

दुर्योधन—गुरु जी ! ऐ मेरे धर्म और धनुष के गुरु जी ! दक्षिणा स्वीकार कीजिएगा।

द्रोण—क्या दक्षिणा ?—रहने दो, रहने दो। मैं आपसे एक विनती करूँगा।

दुर्योधन—क्या गुरु जी विनती करेंगे ?

भीष्म—अजी ! कुछ भी प्रयोजन नहीं, जब कि—

विधि-सहित यौवन में जिन्होंने सोम-रस को है पिया,
रहते तुम्हारे राज्य में, यश भी जिन्होंने पा लिया !
है द्रव्य, फल वह कौन-सा, वह कौन गुण सविशेष है,
जो विप्र क्षत्राचार्य को अब प्राप्त करना शेष है ! ॥३०॥

दुर्योधन—आज्ञा कीजिएगा, आप। आप क्या चाहते हैं ? मैं आपके लिए क्या करूँ ?

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! मैं कहता हूँ।

दुर्योधन—आप अब क्या सोच रहे हैं ?

अत्यंत प्रिय मैं हूँ तुम्हें, उपदेश तुमने ही दिया,
है शूर-गण में नाम मेरा, समर में विक्रम किया।
क्या चाहते ? क्या दूँ तुम्हें ? स्वच्छंद बतला दो अभी,
है हाथ में मेरे गदा, बस आपका ही है सभी ॥३१॥

द्रोण—पुत्र ! अभी कहता हूँ। किंतु, अश्रु-प्रवाह मुझे रोक रहा है।

सब—क्या गुरु जी रो रहे हैं ?

भीष्म—पौत्र ! तुम्हारा परिश्रम निष्फल है।

दुर्योधन—कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की।

दुर्योधन—पानी ले आओ।

भट—जो महाराज की आज्ञा। (बाहर जाकर, लौटकर) जय हो, महाराज की। यह रहा पानी।

दुर्योधन—ले आओ। (कलश लेकर) गुरु जी ! आँसुओं से मलिन हुए मुख को धो लीजिएगा।

द्रोण—रहने दो, रहने दो। मेरी कार्य-सिद्धि ही मेरे मुँह को धोएगी।

दुर्योधन—ओह ! धिक्कार है मुझे !

प्रथम कुटिलता का ध्यान आता तुम्हें जो,
यदि निज मन में हो जानते 'मैं न दूँगा'।
शर-कठिन करों को तात ! दोनों पसारो,
यह जल तजता मैं दान-स्वीकार-कारी ॥३२॥

द्रोण—अहा ! मेरे मन में विश्वास हो गया ! पुत्र ! सुनो।

मारे मारे जो फिरें, बीते बारह साल।
'दे दो पांडव-भाग' यह, भीख, दान नरपाल ! ॥३३॥

शकुनि—(आवेगपूर्वक) अजी !

जिसने गुरु-विश्वास से, कहा अहो ! 'लो दान'।
कर प्रवृत्त मख में उसे, उचित न अतिसंधान ॥३४॥

द्रोण—क्या अतिसंधान ?—ऐ गांधार देश का राज्य पाकर गर्व में चूर हुए शकुनि ! तुम अनार्य हो, इसलिए क्या सारे संसार को अनार्य समझते हो ? ओ हो !

'बांधव-पैतृक-राज्य दो', क्या यह अतिसंधान ?
उचित न माँगे से दिया, बल से वा ह्रियमाण ॥३५॥

सब—क्या बलपूर्वक ?

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! यह तो यज्ञ-दीक्षांत-स्नान का समय है। नाममात्र के मित्र एवं वास्तविक शत्रु शकुनि की बात मत सुनो। देखो, पौत्र !

जो भूमि-तल पर घूमते वन-रज लपेटे अंग में,
हा! पांडु के सुत द्रुपद-नृप की बालिका के संग में!
यह बढ़ रहा जो भाइयों में अब परस्पर द्वेष है,
कारण अहो! उसमें हुआ यह शकुनि-दर्प विशेष है ॥३६॥

द्रोण—पुत्र! कहो।

दुर्योधन—

द्यूत-सभा में जब हरा राज्य, किया अवमान।
बल-समर्थ उनका कहाँ, तब था क्रोध महान? ॥३७॥

द्रोण—इस विषय में, धर्म के धोखे से ठगे गए, द्यूत-व्यसनी युधिष्ठिर से पूछना चाहिए!

सभा-स्तंभ को तोलता, रोका जिसने भीम।
यदि ना रोके, क्यों करे निंदा शकुनि असीम! ॥३८॥

भीष्म—कहाँ की बात कहाँ आ गई! आचार्य जी! इस समय कार्य प्रधान है, न कि कलह।

द्रोण—यहाँ, दीन-वचनों की आवश्यकता नहीं; कलह ही ठीक है!

भीष्म—क्षमा कीजिएगा, आचार्य जी! देखो, बेटा!

निर्बल, दुखी, जग में नहीं जिनका ठिकाना है कहीं,
हैं चाहते जो साम तुमसे, गर्व भी करते नहीं।

तुम हो बड़े, वे प्रेम तुमसे नित्य ही करते अहो,
उनको शरण दोगे तथा मृग-संग रक्खोगे कहो? ॥३९॥

शकुनि—मृगों के साथ ही रहें! मृगों के साथ ही रहें!!

कर्ण—आचार्य जी! क्रोध न कीजिए। क्योंकि, दुर्योधन,

सुनकर परुष हितकर वचन भी क्रुद्ध होता है महा,
सज्जन-पुरुष-विरुदावली को चाहता मानी कहाँ!
बस हो चुकी यह बात, साधो शिष्य-गण के काम को,
वश में करो अब साम से गज-सम महा उद्दाम को ॥४०॥ ×

द्रोण—वत्स! कर्ण! ब्राह्मण में तेज छिपा रहता है! समय पर मुझे सचेत कर दिया! यह मैं तुम्हारी इच्छा के अनुकूल ही करता हूँ। पुत्र! दुर्योधन! क्या मेरा तुम पर कुछ अधिकार है?

भीष्म—अब इन्होंने ठीक मार्ग ग्रहण किया है। क्योंकि, सरलता ही दुर्विनीतों की औषध है।

दुर्योधन—केवल मेरे ही नहीं, आप मेरे कुल के भी प्रभु हैं।

द्रोण—यह बात सर्वथा तुम्हारे अनुरूप है। तो, पुत्र!

ठगता तुम्हें यदि, दोष लगता कुछ नहीं तुम पर यहाँ,
पीड़ित तुम्हें यदि कर रहा, हो लाभ तुम को ही वहाँ!
कुलशालियों में जो परस्पर फूट पड़ता द्वेष है,
धर्मोपदेष्टा ही उसे करता सदा निःशेष है ॥४१॥

दुर्योधन—अच्छा तो मैं सलाह करना चाहता हूँ।

द्रोण—पुत्र! किसके साथ सलाह करना चाहते हो?

भीष्म, कर्ण, कृप, सिंधु-नृप, जयद्रथ से इस काल।
द्रोणि, विदुर, क्या जनक औ, जननी से? कह बाल! ॥४२॥

दुर्योधन—नहीं, नहीं; मामा जी से।

द्रोण—क्या शकुनि से? (स्वगत) अहो! काम बिगड़ गया!

दुर्योधन—मामा जी! ज़रा इधर आइए। वयस्य! कर्ण! ज़रा इधर आओ।

द्रोण—(स्वगत) अच्छा तो यों कहूँगा! (प्रकट) वत्स! गांधार-राज! ज़रा इधर आओ।

शकुनि—यह आ गया।

द्रोण—वत्स!

कोप-बहुल वय है ज़रा, सहो चपलता-बाल।
है इस रूखे वचन का, आलिंगन प्रतिकार ॥४३॥

भीष्म—(स्वगत)

करते ये गुरु शकुनि की, विनती शिष्य-सराग।
इस विध यह अनुनीत भी, करे न शठता-त्याग ॥४४॥

शकुनि—(स्वगत) अहो ! आचार्य बड़ा धूर्त है ! अपना काम साधने की इच्छा से मुझे बना रहा है !

(सब घूमकर बैठ जाते हैं)

दुर्योधन—मामा जी ! पांडवों के आधे राज्य के विषय में क्या निश्चय है ?

शकुनि—'नहीं देना चाहिए'—यह मेरा निश्चय है।

दुर्योधन—मामा जी को—'देना चाहिए'—यह कहना चाहिए।

शकुनि—यदि राज्य देना ही है, हमसे क्यों सलाह लेते हो ?—तो सभी कुछ दे डालो !

दुर्योधन—मित्र ! अंगराज ! आपने अभी कुछ नहीं कहा !

कर्ण—मैं अब क्या कहूँगा !

श्रीराम ने जिसका प्रथम अनुभव तथा पालन किया ,
प्रतिषेध उस सौभ्रात्र का करता नहीं मेरा हिया।
'राज्यार्द्ध देना चाहिए अथवा न' आप प्रमाण हैं ,
समर-स्थली में बस सहायक ये हमारे प्राण हैं ॥४५॥

दुर्योधन—मामा जी ! बलवान् शत्रुओं से युक्त और आजीविका के अयोग्य कोई कुदेश सोचो। पांडव लोग वहाँ रहें !

शकुनि—ओह !

'नहीं' कहूँगा, पार्थ से कौन अधिक बलवान !
जहाँ युधिष्ठिर नृप, वहाँ ऊसर में भी धान ॥४६॥

दुर्योधन—अच्छा तो अब,

कर-कमल में गुरु के किया मैंने सलिल का दान है ,
हूँ सुन चुका मैं गुरुजनों से जो नितांत प्रमाण है ।
हो यह अनीति प्रवंचना वा जो कहो सब कुछ वही ,
हूँ चाहता करना सलिल मैं वह नृपति ! सचमुच सही ॥४७॥

शकुनि—क्या आप झूठ से पिंड छुड़ाना चाहते हैं ?

दुर्योधन– जी, हाँ !

शकुनि—तो जरा इधर मेरे साथ आओ । (द्रोण के पास जाकर) गुरु जी ! महाराज कुरुराज आपको इस विषय में सूचित करते हैं ।

द्रोण –वत्स ! गांधारराज ! कहो ।

शकुनि—यदि 'पंचरात्र' के भीतर पांडवों का पता लग सके, तो आधा राज्य दे देंगे । अब आप उनका पता लगा लें !

द्रोण—नहीं जी ! नहीं ।

तुमने छल-काम है लखा,
जिनको बारह वर्ष से नहीं ।

फिर क्यों अब 'पंचरात्र' में !
कह देते इससे 'नहीं' यही ॥४८॥

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! धर्म छल-हीन होता है। हम भी इस काम में प्रसन्न हैं। देखो, पौत्र !

एक वर्ष शत वर्ष में तथा,
पांडु-पुत्र-गण-अर्द्ध-राज्य दो।
सत्य-संध बन वीर ! सर्वथा,
सत्य-संध कुरु-वंश है सदा ॥४९॥

दुर्योधन—मेरा यही निश्चय है।

द्रोण—(स्वगत)

कार्य-लोभ से चाहता, 'आज बनूँ हनुमान'।
जलधि लाँघ जिसने दिया, हत सीता का ज्ञान ॥५०॥

तो कहाँ से पांडवों का पता लगाया जाए !

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की। विराट नगर से दूत आया है।

सब—जल्दी भेजो।

भट—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

(दूत का प्रवेश)

दूत—जय हो, महाराज की।

सब—क्या विराटेश्वर आ गए?

दूत—वे दुखी हैं; इसीलिए नहीं आते।

सब—उन्हें क्या क्लेश है?

दूत—सुन सकते हैं महाराज। जो उनके अत्यंत निकट के संबंधी सौ भाई कीचक हैं, उन्हें—

किसी पुरुष ने रात में मारा हो तम-लीन—
बाहु-युगल से, दीखता शव-वध शस्त्र-विहीन ॥५१॥

सब—क्या विना हथियार के मार दिया?

भीष्म—क्या शस्त्र-रहित ने? (एक ओर को) आचार्य जी! 'पंचरात्र' की अवधि को स्वीकार कर लीजिए?

द्रोण—(एक ओर को) किसलिए?

भीष्म—

भुजशाली यह भीम का, ही है कृत्य ललाम!
भोगा कुरु-गत क्रोध का, कीचक-शत परिणाम ॥५२॥

द्रोण—आप कैसे जानते हैं?

भीष्म—

क्यों, बछड़ों की चपलता, करते तीर-विहार।
महावृषभ जानें न बुध! उनका शृंग-प्रहार? ॥५३॥

द्रोण—क्या महावृषभ? अहा! काम बन गया! (प्रकट) पुत्र! दुर्योधन! सही—'पंचरात्र'!

दुर्योधन—जी, हाँ! सही—पंचरात्र!

द्रोण—ऐ यज्ञ में समुपस्थित राजाओ! सुनें, सुनें, आप लोग। ये श्रीमान् कुरुराज दुर्योधन, न न न, मामा जी सहित, यदि पांडवों का पता लग सके, तो आधा राज्य दे देंगे। क्यों पुत्र!

दुर्योधन—जी, हाँ!

द्रोण—यह ठीक ठीक सोच लो!

शकुनि—अवसर आने पर जान लूँगा!

द्रोण—क्यों गांगेय जी!

भीष्म—(स्वगत)

प्रकटित जो आचार्य हैं, करते हर्ष महान।
छलित सुयोधन ने छला इनको—पड़ता जान ॥५४॥

(प्रकट) पौत्र! दुर्योधन! विराट मेरा छिपा हुआ शत्रु है; और वह आपके यज्ञ में भी सम्मिलित नहीं हुआ!—इसलिए उसकी गाएँ हर लो।

द्रोण—(एक ओर को) गांगेय जी ! श्रीमान् विराटाधिपति मेरे प्रिय शिष्य हैं । उनकी गायों को हरने से क्या प्रयोजन है ?

भीष्म—(एक ओर को) ऐ ऋजु-बुद्धि ! ब्राह्मण !

होंगे पांडव कुपित अति, सुनकर रथ-रव घोर ।
इष्ट-सिद्धि गो-हरण में, वे कृतज्ञ-सिरमौर ॥१५॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । नगर में सीधा प्रवेश करने के लिए रथ तैयार हैं ।

दुर्योधन—

हर लो सत्वर धेनु सब, इन्हीं रथों के साथ ।
यज्ञ-शांत अपनी गदा, पकड़ूँगा फिर हाथ ॥१६॥

द्रोण—

तो रथ मेरा लाओ पुरुषो !

शकुनि—

हाथी मेरा भी लाओ ;

कर्ण—

भारार्थ-सुसज्जित, हय-गण-सज्जित ,
रथ मेरा ले आओ ।

भीष्म—

विराट-पुर जाने को उत्सुक—
मन मम, धनु लाओ, जाओ :

सब—

सेवक हम सब सज्जित, तज धनु
आप यहीं पर सुख पाओ ॥५७॥

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! हम दोनों युद्ध में तुम्हारा पराक्रम देखने के इच्छुक हैं।

दुर्योधन—जैसी आपकी इच्छा !

द्रोण—वत्स ! गांधारराज ! इस गो-हरण में पहला रथ तुम्हारा होगा।

शकुनि—अच्छा, बहुत अच्छी बात है !

(सब का प्रस्थान)

दूसरा अंक

(वृद्ध ग्वाले का प्रवेश)

वृद्ध ग्वाला—मेरी गाएँ सदा बछड़ों से युक्त रहें ! गोप-युवतियाँ सदा सुहागिनी बनी रहें ! हमारे महाराज विराट सार्वभौम राजा बनें ! महाराज विराट के वार्षिक जन्म-नक्षत्र के शुभ अवसर पर, गो दान के निमित्त, नगर-वाटिका के मार्ग पर आने के लिए गाएँ सजाई गई हैं; और ग्वालों के सब बालक, बालिकाएँ, नए नए कपड़े और गहने पहने, आनंद-मंगल मना रहे हैं ! इनमें से नायक के पास आकर बातचीत करूँगा। (देखकर)

क्या कारण है कि, यह कौआ, सूखे हुए वृक्ष पर बैठकर, शुष्क डाली के साथ चोंच रगड़ रगड़ कर, सूर्य की ओर मुँह किए, भीषण शब्द कर रहा है! ईश्वर, हमारा और गो-धन का कल्याण करे! अब मैं, इनमें से नायक के पास जाकर, ग्वालों के बालक और बालिकाओं को बुलाऊँगा! (घूमकर) अरे! गोमित्रक! गोमित्रक!

(गोमित्रक का प्रवेश)

गोमित्रक—मामा जी! प्रणाम।

वृद्ध ग्वाला—ईश्वर, हमारा और गो-धन का कल्याण करे! कल्याण करे!! महाराज विराट के वार्षिक जन्म-नक्षत्र के शुभ अवसर पर, गो-दान के निमित्त, नगर वाटिका के मार्ग पर आने के लिए गाएँ सजाई गई हैं! और ग्वालों के बालक और बालिकाएँ— सब के सब—नए नए कपड़े और गहने पहने, आनंद-मंगल मना रहे हैं! अरे! गोमित्रक! ग्वालों के बालक और बालिकाओं को बुलाओ।

गोमित्रक—जो मामा जी की आज्ञा। गोरक्षिणी! घृतपिंड! स्वामिनी! वृषभदत्त! कुंभदत्त! महिषदत्त! आओ, जल्दी आओ।

(सब गोप-बालक तथा बालिकाओं का प्रवेश)

सब—मामा जी! प्रणाम।

वृद्ध ग्वाला—ईश्वर, हमारा और गो-धन का, गोप-बालक

और बालिकाओं का कल्याण करे ! कल्याण करे !! महाराज विराट के वार्षिक जन्म-नक्षत्र के शुभ अवसर पर, गो-दान के निमित्त, नगर-वाटिका के मार्ग पर आने के लिए गाएँ सजाई गई हैं। आओ, हम तब तक गाएँ और नाचें !

सब—जो मामा जी की आज्ञा।

(सब नाचते हैं)

वृद्ध ग्वाला—ही ! ही !! ख़ूब नाचे ! ख़ूब गाया ! अब मैं भी नाचता हूँ। (नाचता है)

सब—हा ! हा ! मामा जी ! बड़ी धूल उड़ी है !

वृद्ध ग्वाला—सिर्फ़ धूल ही नहीं, शंख और नगाड़ों का शब्द भी उठ खड़ा हुआ !

सब—हा ! हा ! मामा जी ! दिन के चाँद की रोशनी की तरह सफ़ेद, धूल से ढका हुआ सूरज का गोला, कहीं दीख पड़ता है, कहीं नहीं।

गोमित्रक—हा ! हा ! मामा जी ! ये कोई चोर आदमी, घोड़ा-गाड़ी पर सवार होकर, दही के चकत्ते की तरह सफ़ेद छाते लगाए, ग्वालों की बस्ती को रौंदे डाल रहे हैं !

वृद्ध ग्वाला—ओ हो ! बाण छुटने लगे ! लड़को ! लड़को ! झट पट घरों में घुस जाओ।

सब—जो मामा जी की आज्ञा।

(सब का प्रस्थान)

वृद्ध ग्वाला—हा ! हा ! ठहरो, ठहरो। 'मारो, मारो; पकड़ो, पकड़ो'—यह वृत्तांत महाराज को सूचित करेंगे।

(प्रस्थान)

प्रवेशक

(भट का प्रवेश)

भट—ऐ ऐ ! सूचित कर दो, सूचित कर दो महाराज विराटेश्वर को—चोरों के समान बहादुरी दिखाने वाले कौरव गाएँ हरे ले जा रहे हैं ! क्योंकि,

हैं भग रहे बछड़े तथा हैं पा रहीं गाएँ व्यथा,
हा ! साँड लख लख हो रहे भयभीत-मुख हैं सर्वथा।
इस भाँति हाहाकार चारों ओर गो-कुल कर रहा,
हा ! शोचनीय बना यहाँ दुख-जलधि में है तर रहा ! ॥१॥

(नेपथ्य में)

क्या, 'कौरव'—यह कहते हो ?

भट—आर्य ! जी, हाँ !

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—भाइयों से भी द्रोह करने वालों के लिए यह उचित ही है। ये, सचमुच,

कर बाँध गोधा अंगुलित्र, स-चाप, बल-ऐंठे हुए ,
होकर सुसज्जित निज रथों पर, कवच-धर, बैठे हुए ।
हैं अस्त्र-विद्या में निपुण जो, युद्ध को तैयार हैं ,
नृप-शत्रुता का धेनु-कुल में कर रहे प्रतिकार हैं ॥२॥

जयसेन ! महाराज जन्म-नक्षत्र-संबंधी कार्य में लगे हुए हैं। इसलिए, बिना अवसर सूचना देने से वे क्रुद्ध हो जाएँगे। इसलिए मैं पुण्य-दिन के काम की समाप्ति पर ही निवेदन करूँगा।

भट—आर्य ! यह काम विलंब करने का नहीं है; जल्दी ही सूचित कर दो।

कंचुकी—अभी सूचित किए देता हूँ ।

(राजा का प्रवेश)

राजा—

धिक्कार ! रथ के शब्द से डर, वत्स-गण करके त्वरा—
हैं भग रहे जिसके, अहो ! वह धेनु-कुल जाता हरा !
अतिपीन कंधों से सजा, चंदन-सुशोभित जो तथा,
चंचल-वलय कर ढीठ मेरा भोगता कर सर्वथा !॥३॥

जयसेन ! जयसेन !

(जयसेन का प्रवेश)

भट—जय हो, जय हो, महाराज की।

राजा—मुझे महाराज मत कहो। मेरा क्षत्रियत्व जाता रहा। युद्ध का सविस्तर वर्णन करो।

भट—महाराज ! अप्रिय बातों को विस्तारपूर्वक नहीं कहना चाहिए। यह संक्षेप है—

गायों के बस एक-से, रथ-रज से सब अंग।
कशाघात में दीखते, रंग-बिरंगे रंग॥४॥

राजा—तब तो,

शीघ्र धनुष तुम मेरा लाओ,
लाओ रथ भी वीर !
भक्ति हृदय में जिसके, मेरे—
साथ चले रण-धीर॥

समर-भूमि में विफल न होगा,
गो-हित साहस-कर्म ।
मरने पर भी कीर्ति मिलेगी,
छुड़वाकर औ धर्म ॥५॥

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

राजा—न जाने, दुर्योधन की मेरे साथ क्या शत्रुता है ! आः !—क्योंकि मैं यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुआ !—क्या समझूँ ! कीचकों के मारे जाने के कारण हम अत्यंत दुखी थे । अथवा, पांडवों से मैं गुप्त-रूप में प्रेम करता हूँ—यह कारण हो सकता है ! सर्वथा युद्ध ही उचित है । हस्तिनापुर में रहने के कारण भगवान् दुर्योधन के स्वभाव को पहचानते हैं । अथवा,

यदपि कहेंगे ये नहीं, कुरुपति-रंध्र-स्थान ।
अर्थी अनथक पूछता, रख निज कार्य-ध्यान ॥६॥

कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ।

राजा—भगवान् को तो बुलाओ ।

भट—जो महाराज की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(भगवान् का प्रवेश)

भगवान्—(चारों ओर देखकर) अरे ! यह क्या है !

हैं अश्व-गण सजते कवच से, सज रहे गजराज हैं,
हैं जुड़ रहे रथ, वीर-गण सजते समर के साज हैं।
यह देखकर मेरे हृदय में भय अपूर्व समा रहा,
पर निज विषय में कुछ न, मैं स्थिर-बुद्धि, वे चंचल अहा ! ॥७॥

(पास जाकर) जय हो, आपकी जय हो।

राजा—विराट के भगवान् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

भगवान्—स्वस्ति !

राजा—अनुगृहीत हूँ। भगवन् ! यह आसन है। विराजिएगा।

भगवान्—अच्छा। (बैठकर) ऐ राजन् !

सजते रण-साज क्यों यहाँ ?
नृप-लक्ष्मी परितृप्त क्या नहीं ?
करने अरि-गर्व चूर क्या ?
हरने वा दुख-जाल लोक का ? ॥८॥

राजा—भगवन्! गाएँ हर कर मेरा अपमान किया है।

भगवान्—किसने?

राजा—धृतराष्ट्र के पुत्रों ने।

भगवान्—क्या, धृतराष्ट्र के पुत्रों ने ? (स्वगत) अरे! यह बुरी बात है!

बंधु-भाव जग में अहो! यहाँ,
बुद्धिमान-मन को कँपा रहा!
वैर-प्रेमि-कुरु-पुत्र-दोष भी,
'आत्म-दोष' हम मानते यहाँ ॥९॥

राजा—भगवन्! आप अब क्या सोच रहे हैं?

भगवान्—कुछ भी नहीं। मुझे उनके विषय में दुःख है।

राजा—आज से शांत होकर बैठ रहेंगे! यदि शक्त होकर भी युधिष्ठिर सहन करते हैं, मैं नहीं सहूँगा।

भगवान्—यह ठीक है! (स्वगत) आज, इस समय,

वन-भू बिछी पत्तों की सेज,
पर का धर कर रहना वेश।
राज्य-नाश, द्रौपदी-अपमान—
श्लाघ्य, कहें नृप क्षमा-विशेष ॥१०॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की।

राजा—अब दुर्योधन क्या कर रहा है ?

भट—केवल दुर्योधन ही नहीं, पृथिवी पर के सारे राजा आए हैं।

> **द्रोण, भीष्म, कृप, शकुनि औ कर्ण, जयद्रथ, शल्य।**
> **चंचल-पट रथ-केतु से देते शल्य, न शल्य ॥११॥**

राजा—(उठकर, हाथ जोड़कर) क्या पूजनीय गांगेय भी आए हैं ?

भगवान्—(स्वगत) ठीक है; अपमानित होकर भी सदाचार का उल्लंघन नहीं किया ! क्यों,

> **कुरु-बाबा ये किसलिए, हैं आए इस बार !**
> **स्मरण कराते हों ! मुझे, 'तीर्ण प्रतिज्ञा-भार' ॥१२॥**

राजा—कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की।

राजा—सारथि को तो बुलाओ।

भट—जो महाराज की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(सारथि का प्रवेश)

सारथि—जय हो, महाराज की।

राजा—

प्राप्त रणातिथि धन्य है, रथ लाओ इस काल।
चाह न जय की, भीष्म को तुष्ट करे शर-जाल ॥१३॥

सारथि—जो महाराज की आज्ञा। राजन्!
परिचित रिपु-बल-नाश में, जो रथ तव नृप-केतु!
चढ़ उस पर उत्तर गए, रथ-कौशल के हेतु ॥१४॥

राजा—क्या राजकुमार चले गए?

भगवान्—ऐ राजन्! रोको, रोको, राजकुमार को!

गुण-दोष-ज्ञानविहीन रण में बाल्य से उद्दंड है,
आकर निकट समराग्नि दहती यह किसे न प्रचंड है!
फिर, आपड़े संमुख समर में जो न कौरव छोड़ते,
रण-दोष कहता प्रेम से, परिभव न जानो नृपपते! ॥१५॥

राजा—तो शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो।

सारथि—जो महाराज की आज्ञा।

राजा—अथवा, ज़रा इधर आओ।

सारथि—राजन्! यह आगया।

राजा—

रथ-चालन तुमने न क्यों, किया कुँवर का आज?
रोका उसने ही तुम्हें, तथा तजा यह काज? ॥१६॥

सारथि—प्रसन्न हों, महाराज। रथ को भली भाँति सजाने के बाद मैं सारथी के योग्य आचार के साथ, उनके पास गया था। किंतु, कुँवर जी ने,

बाल-खेल! कौशल लखा, उस में तथा ललाम!
बृहन्नला को, तज मुझे, सौंपा सारथि-काम ॥१७॥

राजा—क्या बृहन्नला को?

भगवान्—राजन्! घबराइएगा नहीं।

यदि धूलि-वितान से ढकी,
रथ-आसीन बृहन्नला गई।
क्षण में रथ नेमि-शब्द से-
रिपु जीते, शर-वृष्टि-हीन ही ॥१८॥

राजा—तो शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो।

सारथि—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(भट का प्रवेश)

भट—कुँवर जी के रथ का आगे बढ़ना रोक दिया !

राजा—क्या आगे बढ़ना रोक दिया ?

भगवान्—क्या अब आगे बढ़ना रोक दिया ?

भट—सुन सकते हैं, महाराज ।

रण-पटु हय-पथ में डटे, रिपु-गण जब घनघोर ।
परिभव पा वन-लोभ से, रथ श्मशान की ओर ॥१९॥

भगवान्—(स्वगत) आः ! यहाँ गांडीव है । (प्रकट) ऐ राजन् !

रथ श्मशान की ओर जो, समझो शकुन महान ।
धार्तराष्ट्र अब हैं जहाँ, होगा वहीं श्मशान ॥२०॥

राजा—भगवन् ! बिना अवसर के शुभ-सूचक वचन क्रोध उत्पन्न करता है ।

भगवान्—क्रोध मत कीजिएगा । मैंने कभी पहले झूठ नहीं बोला !

राजा—हाँ ! यह ठीक है ! जाओ, फिर समाचार मालूम करो ।

भट—जो महाराज की आज्ञा।

(प्रस्थान)

राजा—

कंपित-सी जिससे धरा, सहसा शब्द महान।
कौन नदी-सम वक्र यह, क्षण क्षण में ध्वनमान! ॥२१॥

देखो, कैसा शब्द है?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की। श्मशान में पहुँच कुछ देर घोड़ों के विश्राम कर चुकने पर कुँवर जी ने तो,

भगवान्—यह मुझे झूठा न सिद्ध कर दे!

राजा—क्या किया राजकुमार ने?

भट—

शर मार सौ सौ नील हाथी लाल रंग में हैं रंगे!
है कौन हय, भट वा न जिसके बाण सौ तन में लगे!
शर-विद्ध रथ-वर हैं हुए शर-जाल से निश्चल अहा!
पथ रुद्ध बाणों से, धनुष शर-धार उग्र बहा रहा! ॥२२॥

भगवान्—(स्वगत)

ये अक्षय तूणीर हैं, जिनसे खांडव-दाह—
धाराएँ जितनी, तजा उतना बाण-प्रवाह ॥२३॥

राजा—अच्छा तो शत्रुओं के विषय में अब क्या समाचार है ?

भट—मैं प्रत्यक्ष-रूप में उनके विषय में कुछ नहीं जानता। किंतु, संवाददाता कहते हैं—

'धनुष-घोष यह वही' इसी से,
द्रोण न लड़ता है पहचान ;
'उचित न रण' यह सोच भीष्म भी,
शांत हुआ लख ध्वज पर बाण।
भग्न-मनोरथ कर्ण शरों से,
'क्या यह !' सब नृप करते ध्यान ;
अभिमन्यु भयंकर रण में जूझा,
बालक तनिक न भय को मान ॥२४॥

भगवान्—क्या अभिमन्यु आया है ? ऐ राजन् !
लड़ता यदि सौभद्र है, कुल-युग-तेज अनन्य !
बृहन्नला लाचार है, भेजो सारथि अन्य ॥२५॥

राजा—नहीं, आप ऐसा न कहें !

अचल-कवच जो राम-शरों से-
भीष्म, द्रोण मंत्रायुध धन्य !
कर्ण, जयद्रथ विचलित करके,
उन उन राजाओं को अन्य !
क्या न पिता के भय से करता,
धर्षण उसका शर-गण मार !
सख्य-भाव-समुचित सम-वय की,
करे सखा भी यों रखवार ! ॥२६॥

भट—कुँवर जी का यह रथ,

है रोकने पर घूमता अति, छोड़ने पर भागता,
पाकर समय लंघन तथा परिभव न करना चाहता ।
चंचल समीप-स्थान में, चारों तरफ भगता अहा !
इस भाँति मानों रथ कुँवर का योग्य-शिक्षा दे रहा ! ॥२७॥

राजा—जाओ, फिर समाचार मालूम करो ।

भट—जो महाराज की आज्ञा । (बाहर जाकर, लौटकर) जय हो, महाराज की । जय हो, विराटाधिपति की । कुँवर जी ने गो-हरण पर विजय प्राप्त कर ली । कौरव भाग गए ।

भगवान्—सौभाग्य से, आपकी वृद्धि हो रही है ।

राजा—नहीं, नहीं; यह भगवान् की ही वृद्धि है । अच्छा तो, अब कुँवर जी कहाँ हैं ?

भट—कुँवर जी, जिन योद्धाओं को उन्होंने रण में साहस करते देखा है, उनके कारनामे पुस्तक में लिख रहे हैं।

राजा—अहो! राजकुमार सचमुच प्रशंसनीय काम कर रहे हैं।

कर विक्रम जो समर में, भट पाता व्रणजाल।
हरता उसकी वेदना, सत्वर ही सत्कार ॥२८॥

अच्छा तो बृहन्नला अब कहाँ हैं?

भट—प्रिय सूचना देने के लिए भीतर गई हैं।

राजा—बृहन्नला को तो बुलाओ।

भट—जो महाराज की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(बृहन्नला का प्रवेश)

बृहन्नला—(देखकर, विचारपूर्वक)

धनुष स-गुण करने को करता-
था मैं कुछ क्षण यत्न महान!
कुछ क्षण बाण चलाने, लेने—
में भी मुष्टि न थी बलवान!
वेष्टन-पटुता नष्ट हुई थी,
ठीक न कुछ क्षण था संस्थान,!

अबला-वेश-निवास-शिथिल फिर,
निजका पीछे आया ध्यान ॥२९॥

क्योंकि, मैंने,

स्त्री-वेश धारी नृप-मध्य में हा,
सलज्ज हो के निज चाप खींचा।
तथापि यात्रा शर-वृष्टि में थी,
थी रक्त-भीगी रज भूमि-लीना ॥३०॥ ?

अजी !

मैं जीत धेनु, जय भी कर भूप सारे,
मानूँ न हर्ष अपने मन में ज़रा भी।
जो युद्ध में रिपु दुशासन को विना ही—
बाँधे विराट-पुर में अब आगया हूँ ॥३१॥

उत्तरा के प्रीतिपूर्वक दिए हुए इस अलंकार को पहने हुए मुझे राजा से मिलने में लज्जा-सी प्रतीत होती है। अच्छा तो विराटेश्वर से मिलता हूँ। (घूमकर, देखकर) अये ! ये आर्य युधिष्ठिर हैं।

युवा तपस्वी तपते वनांत में,
नरेश भी ब्राह्मण-वृत्ति धारते।
विशोभि श्री से अति राज्य-हीन भी,
त्रिदंड-धारी नहिं दंड धारते ॥३२॥

(समीप जाकर) भगवन् ! प्रणाम ।

भगवान्—स्वस्ति ।

बृहन्नला—जय हो, भर्ता जी की ।

राजा—

कुलीनता हेतु न हेतु रूप है,
महान हो नीच, प्रधान कर्म है ।
अहो ! इसी का अपमान था किया,
सु-मान-भागी अब रूप है वही ॥३३॥

बृहन्नले ! थकी हुई भी तुम्हें मैं फिर कष्ट दूँगा । युद्ध का सविस्तर वर्णन करो ।

बृहन्नला—सुनें, भर्ता जी ।

राजा—ओजस्वी कर्म है । संस्कृत में कहो ।

बृहन्नला—सुन सकते हैं, महाराज

(भट का प्रवेश)

भट— जय हो, महाराज की ।

राजा—

लख पड़ते हर्षित बड़े, कहो चकित क्यों आज ?

भट—

'कैद हुआ अभिमन्यु' यह प्रिय अचिंत्य नृपराज ! ॥३४॥

बृहन्नला—क्या पकड़ा गया ? (स्वगत)

यह नृप-बल मैंने आज जाँचा गिना है ,
फिर वह उसका भी शौर्य मैंने लखा है ।
सदृश न उसके है सैन्य में वीर कोई ,
फिर अब मरने से कौन हो कीचकों के ! ॥३५॥

भगवान्—बृहन्नले ! यह क्या है ?

बृहन्नला—भगवन् !

न जाने जेता कौन, वह शिक्षित औ बल-धाम ।
पकड़ा भी वह जा सके, जनक-भाग्य यदि वाम ! ॥३६॥

राजा—वह अब कैसे पकड़ा गया ?

भट—

अहो ! उतारा यान चढ़, धर निज बाहु ललाम ।

राजा—किसने ?

भट—

सौंपा है नृपराज ने, जिसे महानस-काम ॥३७॥

बृहन्नला—(एक ओर को) इस प्रकार आर्य भीम ने उसका आलिंगन किया है ! पकड़ा नहीं गया !

तृप्त अहो ! हम थे हुए, पा बस दर्शन-योग ।
प्रकट उन्होंने पा लिया, पुत्र-प्रेम का भोग ॥३८॥

राजा—अच्छा तो सत्कारपूर्वक अभिमन्यु को लिवा लाओ ।

भगवान्—ऐ राजन् ! संसार यह समझेगा कि—यादवों तथा पांडवों से रक्षित अभिमन्यु का सत्कार उनके भय से किया है; इसलिए, इसका तिरस्कार करना ही ठीक है ।

राजा—यादवी-पुत्र तिरस्कार का भाजन नहीं हो सकता । क्योंकि,

है यह युधिष्ठिर-सूनु, सम-वय पुत्र के मम सर्वथा ,
सम-वंश हूँ मैं द्रुपद का है दोहता इससे तथा ।
होगा जमाई शीघ्र ही, कन्या-जनक कहते हमें ,
है पूज्य अभ्यागत यथा-धन इष्ट पांडव हैं हमें ॥३९॥

भगवान्—आप ठीक कहते हैं । हमें ऐसा कहना भी चाहिए था, और उसका परिहार भी होना चाहिए था ।

राजा—अच्छा तो इसे कौन लिवाकर लाए ?

भगवान्—बृहन्नला लिवा लाए !

राजा—बृहन्नले ! अभिमन्यु को लिवा लाओ ।

बृहन्नला—जो महाराज की आज्ञा। (स्वगत) मुझे अपनी चिरकालीन प्रार्थना के अनुकूल काम मिला है।

(प्रस्थान)

भगवान्—(स्वगत)

बस, आज इसको इस समय निज-पुत्र का दर्शन मिले !
लखकर विजन में और उसका गाढ़ आलिंगन मिले !
स्वच्छंद होकर छोड़ दे आनंद-बाष्पों की लड़ी !
प्रत्यक्ष इस व्यापार में आती इसे लज्जा बड़ी ॥४०॥

राजा—आप राजकुमार की बहादुरी देखिएगा !

जीते नृप भीष्मादि सब, कैद सुभद्रा-बाल।
उत्तर ने संक्षेप में, जीती भूमि विशाल ॥४१॥

(भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—

धर भुज जननी बंधुगण, जतु-गृह-ज्वाला-काल।
तुल्य श्रांत रथ से उठा, आज सुभद्रा-बाल ॥४२॥

इधर को, इधर को, राजकुमार !

(अभिमन्यु तथा बृहन्नला का प्रवेश)

अभिमन्यु—अरे ! यह कौन है !

उर विशाल, सुंदर उदर, स्कंध पीन, कटि क्षीण ।
महाजंघ, धर भुज, सबल, लाया, किया दुखी न ॥४३॥

बृहन्नला—इधर को, इधर को, राजकुमार !

अभिमन्यु—अये ! यह दूसरा कौन है !

जो अनुचित स्त्री-वेश में, गज ज्यों हथिनी-रूप ।
बल-महान लघु वसन से, हर ज्यों उमा-स्वरूप ॥४४॥

बृहन्नला—(एक ओर को) इसको यहाँ लाकर आर्य ने अब यह क्या किया ?

'प्रथम समर हारा' दोष-भागी बनाया ,
प्रिय-सुत-रहिता हा ! शोचनीया सुभद्रा ।
समझ 'जित' इसे श्रीकृष्ण भी क्रुद्ध होंगे ,
बहुत बस कहूँ क्या, बाहु दोषी बनाए ॥४५॥

भीमसेन—अर्जुन !

बृहन्नला—जी हाँ ! जी हाँ ! यह अर्जुन-पुत्र है !

भीमसेन—(एक ओर को)

सकल ग्रहण के ये दोष मैं जानता हूँ,
निज सुत सहता है कौन वा शत्रु-बंदी !
पर, प्रिय-तनया जो भोगती दुःख भारी,
द्रुपद-नृपति-बाला देख ले, तात ! लाया ॥४६॥

बृहन्नला—(एक ओर को) आर्य ! मुझे इससे बातचीत करने की बड़ी भारी उत्कंठा है। आर्य इसे बोलने के लिए प्रेरित करें !

भीमसेन—अच्छा। अभिमन्यो !

अभिमन्यु—'अभिमन्यु !'—सचमुच !

भीमसेन—यह मुझ से रुष्ट होता है। तुम्हीं इससे बातचीत करो।

बृहन्नला—अभिमन्यो !

अभिमन्यु—क्यों,क्यों ! मैं 'अभिमन्यु' हूँ !—सचमुच ! ओह !

नीच पुरुष भी क्या कभी, लेते क्षत्रिय-नाम ?
देश-रीति, वा बंदि का यह परिभव उद्दाम ? ॥४७॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! क्या तुम्हारी माता सकुशल है ?

अभिमन्यु—क्यों, क्यों ! माता के विषय में पूछते हो ?

धर्मराज क्या भीम तुम, अथवा अर्जुन तात।
पितृ-सम स्वर में पूछते, जो मुझसे स्त्री-बात ? ॥४८॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! क्या देवकी-पुत्र कृष्ण कुशलपूर्वक हैं ?

अभिमन्यु—क्यों, उनका भी नाम लेते हो ? जी, हाँ ! जी, हाँ ! कुशलपूर्वक है—आपका बंधु !

(दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं)

अभिमन्यु—आप लोग क्यों अब मेरी हँसी उड़ा रहे हैं ?

बृहन्नला—क्या कुछ भी कारण नहीं ?

पार्थ जनक, मातुल तथा मधुसूदन, सुकुमार !
अस्त्र-निपुण क्या युवक की समुचित रण में हार ? ॥४९॥

अभिमन्यु—बंद करो—व्यर्थ ही बकवाद !

निज स्तुति करना है नहीं, कुल में मम सौजन्य ।
शव-गण में शर-गण लखो, नाम न होगा अन्य ॥५०॥

बृहन्नला—(स्वगत) कुमार ने ठीक कहा ।

रथ, अश्व-गण, मदमत्त हाथी, शूर शोभित थे जहाँ,
किसको न शर-विद्या-निपुण ने समर में बींधा वहाँ !
करता मुझे भी बाण से निज बाल घायल शीघ्र ही,
रथ को न अपने फेरता मैं शीघ्रता से जो कहीं ! ॥५१॥

(प्रकट) ऐसी अभिमान-भरी बात ! फिर उस पैदल ने क्यों पकड़ लिया ?

अभिमन्यु—

शस्त्र-हीन आया निकट, इससे हुआ गृहीत।
अशस्त्र को क्यों मारता, कर पितृ-स्मरण पुनीत ? ॥५२॥

भीमसेन—(स्वगत)

जिसने संमुख ही सुना, रण में शौर्य अनन्य—
निज सुत का अपना तथा, है वह अर्जुन धन्य ! ॥५३॥

राजा—जल्दी लाओ, जल्दी लाओ अभिमन्यु को।

बृहन्नला—इधर को, इधर को, राजकुमार ! ये महाराज हैं। राजकुमार पास चले जाएँ !

अभिमन्यु—आः ! किसके महाराज ?

बृहन्नला—न न न ! ब्राह्मण के साथ बैठे हैं !

अभिमन्यु—क्या ब्राह्मण के साथ ? (पास जाकर) भगवन ! मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान्—आओ, आओ, वत्स !

जो धीर वीर विनीत करुणा-युक्त निज-जन में तथा,
है जो प्रियंवद तेजधारी धनुष-विजयी सर्वथा।
हों एक ही ये जनक के गुण प्राप्त तुमको शीघ्र ही !
बस, शेष चारों में तुम्हें जो भी रुचे पाओ वही ! ॥५४॥

अभिमन्यु—अनुगृहीत हूँ।

राजा—आओ, आओ, पुत्र ! मुझे क्यों अभिवादन नहीं करते ? अहो ! यह क्षत्रिय-कुमार सचमुच बड़ा घमंडी है ! अच्छा, मैं इसके गर्व को ठंडा करूँगा। अच्छा तो इसे किसने पकड़ा है ?

भीमसेन—महाराज ! मैंने।

अभिमन्यु—'शस्त्र-हीन ने'—यह कहो !

भीमसेन—बस करो ! बस करो !!

> स्थूल-स्कंध मृदु बाहु ये, स्वाभाविक मम शस्त्र !
> इनसे ही रण में लडूँ, निर्बल लेते अस्त्र ॥५५॥

अभिमन्यु—ऐसा मत कहो !

> भुज जिसकी अक्षौहिणी, सहज पराक्रम तात !
> क्या तुम मध्यम तात हो, सदृश उन्हीं के बात ॥५६॥

भगवान्—पुत्र ! यह 'मध्यम' कौन है ?

अभिमन्यु—सुनिए। अथवा, हम ब्राह्मणों की बात का उत्तर नहीं देते। अच्छा हो, कोई और बोले !

राजा—अच्छा, अच्छा, मेरे कहने से !—पुत्र ! यह 'मध्यम' कौन है ?

अभिमन्यु—सुनिए, जिसने—

जरासंध को बाँध के, बाहु कंठ में डाल।
मार उसे वंचित किया, उससे वह नँदलाल ॥५७॥

राजा—

कुपित न निंदा-वचन से, सुख देता तव रोष।
'क्यों खड़ा, भग जा'—कहूँ यदि मैं, मिले न दोष? ॥५८॥

अभिमन्यु—यदि मुझ पर अनुग्रह ही करना है तो,

वंदी-समुचित बेड़ी मेरे-
चरण-युगल में तुम डालो।
ले जाएगा भीम भुजा से,
हे भुज से हरने वालो! ॥५९॥

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—

मिथ्या प्रशंसा अति कष्ट देती,
मिथ्या-प्रशंसा-रत बंदियों की।
देते मुझे ये रण की बड़ाई,
देता 'हुँकारी' मन में लजाता ॥६०॥

(पास पहुँच कर) भगवन्! मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान्—स्वस्ति।

उत्तर—पिता जी ! मैं प्रणाम करता हूँ।

राजा—आओ, आओ, पुत्र ! चिरजीवी होओ। पुत्र ! क्या साहसी योद्धाओं का सम्मान कर चुके ?

उत्तर—जी, हाँ: उनका सम्मान हो चुका। अब पूज्यतम की पूजा कीजिएगा।

राजा—पुत्र ! किसकी ?

उत्तर—इन पूजनीय धनंजय की !

राजा—क्या धनंजय की ?

उत्तर—जी, हाँ ! पूजनीय इन्होंने,

धनु, अक्षय-बाण-युक्त ला—
निज तूणीर श्मशान से अहो !
रण में कर भग्न वे सभी—
नृप भीष्मादि, हमें बचा लिया ! ॥६१॥

राजा—ऐसी बात है !

बृहन्नला—दया करें, दया करें, महाराज।

अति व्यग्र स्व-बाल-भाव से,
लड़ता भी निज को न जानता।
खुद ही कर काम भी सभी,
पर का ही उसको बखानता ॥६२॥

उत्तर— आप अपनी शंका दूर कर लें ! यह, ठीक ठीक बता देगा—

गांडीव-डोरी-कृत चिन्ह सूखा,
प्रकोष्ठ में जो इनके छिपा है।
सवर्णता को जिसने न पाया—
प्रकोष्ठ की बारह वर्ष में भी ॥६३॥

बृहन्नला—

रुकने से यह वलय के, होकर मलिन महान।
फिर फिर फिरने से हुआ, चिन्ह प्रकोष्ठ-स्थान ॥६४॥

राजा—जरा देखें तो !

बृहन्नला—

भिन्न-देह यदि रुद्र-बाण से,
पार्थ मैं भरत-वंश में हुआ !
स्पष्ट तो नृपति ! आज जान लो,
भीमसेन, नृप धर्मराज ये ॥६५॥

राजा—ऐ धर्मराज ! वृकोदर ! धनंजय ! क्यों आप लोग

मेरा विश्वास नहीं करते ? अच्छा, अच्छा ! समय आने पर सही ! बृहन्नले ! तुम भीतर जाओ ।

बृहन्नला—जो महाराज की आज्ञा ।

भगवान्—अर्जुन ! नहीं, भीतर मत जाओ । हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी ।

अर्जुन—जो आज्ञा, आर्य की ।

राजा—

सत्य-संध अति वीर जो, प्रण-पालक निष्पाप—
पांडव-जन के वास से, नष्ट हुए कुल-पाप ॥६६॥

अभिमन्यु—यहाँ पूजनीय मेरे पिता हैं ! ठीक इसी लिए,

निंदित भी ये कुपित न होते ,
हँस उलटा देते ताना !
धेनु-हरण भी अच्छा, जिससे
पितृ-पद दर्शन मनमाना ॥६७॥

(भीमसेन को लक्ष्य करके) ऐ तात !

अभिवादन मैंने न जो, किया प्रथम अनजान ।
सुत के उस अपराध को, करदो क्षमा-प्रदान ॥६८॥

भीमसेन—आओ, आओ, बेटा ! अपने पिता जी के तुल्य पराक्रमी बनो !

अभिमन्यु—अनुगृहीत हूँ।

भीमसेन—पुत्र! पिता जी को अभिवादन करो।

अभिमन्यु—पिता जी! मैं प्रणाम करता हूँ।

अर्जुन—आओ, आओ, वत्स! (छाती से लगा कर)

मन-सुखदायी यह वही, पुत्र-अंग का स्पर्श!
नष्ट जिसे फिर पा लिया, पीछे तेरह वर्ष ॥६९॥

पुत्र! महाराज विराटेश्वर को अभिवादन करो।

अभिमन्यु—मैं प्रणाम करता हूँ।

राजा—आओ, आओ, वत्स!

पाओ युधिष्ठिर-धैर्य तुम, बल भीम अद्‌भुत वीर का,
पाओ समर-कौशल तथा तुम पार्थ उस रण-धीर का।
सुंदर नकुल-सहदेव-सम उनके सदृश विद्वान हो!
उन लोक-प्रिय श्रीकृष्ण जैसी प्राप्त कीर्ति महान हो ॥७०॥

(स्वगत) किंतु, उत्तरा के साथ अत्यंत परिचय मुझे विकल कर रहा है! अब, कैसे करूँगा! अच्छा, सोच लिया! (प्रकट) कौन है यहाँ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की।

राजा—पानी तो ले आओ।

भट—जो महाराज की आज्ञा। (बाहर जाकर, लौटकर) यह लीजिएगा पानी।

राजा—(लेकर) अर्जुन ! गो-हरण-विजय के पारितोषिक के रूप में उत्तरा को स्वीकार करो।

भगवान्—यह—कलंक लग गया !

अर्जुन—(स्वगत) क्या मेरे चरित्र की परीक्षा कर रहे हैं !

(प्रकट) ऐ राजन् !

किया सभी रनवास का, जननी-सम सत्कार।
अर्पित जो यह उत्तरा, सुत-हित है स्वीकार ॥७१॥

युधिष्ठिर—यह—कलंक दूर हो गया !

राजा—

रण-वीरों के चरित में, पाया जिसने नाम।
अब अंतःपुर-वास के, योग्य किए सब काम ॥७२॥

आज ही शुभ नक्षत्र है। आज ही इसका विवाह होजाना चाहिए !

युधिष्ठिर—बहुत अच्छा ! पितामह जी के पास उत्तर को भेजे देते हैं।

राजा—जैसी आपकी इच्छा हो! धर्मराज! वृकोदर! धनंजय! इधर को, इधर को, आप लोग। इसी महान हर्ष के साथ भीतर चलते हैं।

सब—बहुत अच्छा।

(सब का प्रस्थान)

तीसरा अंक

(सारथि का प्रवेश)

सारथि—अरे ! सूचित करदो, सूचित करदो—सब क्षत्रियों को, जिनके कि सेनापति सब क्षत्रियों के आचार्य द्रोण हैं, कि—

बस भूलकर भगवान के उस चक्र के भय को तथा,
चिर-लुप्त कर उन पांडवों का भी पराभव सर्वथा।
रक्षा न जिसकी कर सके कौरव धनुर्धारी अहो,
अभिमन्यु को है हर लिया, लज्जा बड़ी भारी अहो ! ॥१॥

(भीष्म और द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—सारथि ! कहो, कहो !

रण में निपुण अभिमन्यु को हर कौन अपराधी बना,
है कौन रण में चाहता मम दिव्य शर से खेलना ?
था कौन वह नर-श्रेष्ठ, कैसा अस्त्र, बल उसका अहो,
भेजूँ वहीं बलवान शर-गण-दूत मैं अपने, कहो ! ॥२॥

भीष्म—सारथि ! कहो, कहो !

दोष यही जो हार समर भगना नहिं जाने,
यौवन-मद में झूम वहीं रहने की ठाने।
गज-ग्रहण-समुद्यत किसने यह सहसा आ के,
पकड़ा कलभ, यूथ भगने पर, अवसर पा के ? ॥३॥

(दुर्योधन, कर्ण और शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—सारथि ! कहो, कहो ! अभिमन्यु को कौन हर ले गया ? मैं ही उसे छुड़ाऊँगा। क्योंकि,

कुल-रिपुता इसके पितरों से मैंने ठानी,
दोष मुझे ही इससे देंगे सब जन ज्ञानी।
किंतु, प्रथम वह मम सुत, पीछे पांडव-गण का,
कुल-विरोध में क्या कसूर है बालक-जन का ! ॥४॥

कर्ण—आपने अत्यंत प्रेममय और अपने अनुरूप वचन कहा है ! गांधारी-पुत्र !

स्व-जन-भीति से, पुत्र-प्रेम से मत तुम ठानो—
उसे छुड़ाने की, निज-हित रण-बंदी जानो।
रक्षित वह अभिमन्यु नहीं हा ! हम से अपना,
धारो वल्कल, त्याग धनुष का अब तो सपना ॥५॥

शकुनि—सौभद्र के अनेक रक्षक हैं। उसे छुटा हुआ ही समझो। क्योंकि,

अर्जुन-सुत—यह जान विराट नरेश्वर तज दे,
रण-बंदी उसे याद कर दामोदर तज दे !
तज दे कुपित हली से अथवा वह भय खा के,
बली भीम वा ले आए कर अरि-वध जा के ! ॥६॥

द्रोण—सारथि ! कहो, कहो ! वह अब कैसे पकड़ा गया ?

उलटा रथ क्या ? घोड़े बिगड़े ?
चक्र हुआ था पृथिवी-लीन ?
बाण-रहित तरकस ? तुम भूले ?
विफल हुआ धनु वा गुण-हीन ?

विधि-वश पाते हैं सब रण में,
रथी अहो ! ये निग्रह-स्थान !
अरि वश बाणों से भी करते,
पर वह युद्ध प्रवीण महान ? ॥७॥

सारथि—राजन् ! वे पुरुष-वेश-धारी साक्षात धनुर्वेद हैं। क्या महाराज नहीं जानते ?

दोष नहीं इन में था कोई,
जो कुछ भी कहते हैं आप,
महारथी वह भी शर बरसा
दिखलाता था प्रबल प्रताप।
अलात-चक्र-समान चमकते
रथ को परंतु हा ! मेरे,
आकर सहसा पैदल ने ही
पकड़ा, जब लेता घेरे ॥८॥

सब—क्या पैदल ने ?

द्रोण—अच्छा तो, वह पदाति किस प्रकार का था ?

सारथि—क्या वर्णन करूँगा—उसके रूप अथवा पराक्रम का !

भीष्म—स्त्रियों के रूप का और पुरुषों के पराक्रम का वर्णन किया जाता है। इस लिए उसके पराक्रम का वर्णन करो।

सारथि—राजन् !

दुर्योधन—

स्तुति क्यों करते दूत ! किसी की ,
कहकर गर्वित बात ?
कह दो, मुझको त्रास नहीं, यदि—
वह जव में सम-वात ॥९॥

सारथि - सुन सकते हैं, महाराज । उसने, सचमुच,

तज निज जव से पीछे घोड़े ,
पकड़ा कर से अगला भाग ।
फैल गई अश्वों की गरदन ,
स्तब्ध हुआ रथ, सका न भाग ॥१०॥

भीष्म—तब तो हथियार डाल दो ।

सब—किस लिए ?

भीष्म—

यदि कर भुज से ही वेग से हीन रोका—
रथ, तब समझो है गोद में भीम की ही ।
जब जयद्रथ ने हा ! द्रौपदी को हरा था ,
तब पद-चर ने ही शीघ्र जीता उसे था ॥११॥

द्रोण—गांगेय जी ठीक कहते हैं। मैं बचपन से ही, उसे पढ़ाने के समय से लेकर, उसके वेग को जानता हूँ। क्योंकि, शस्त्र-शाला में,

खींच कान तक उसने छोड़ा—
शर जब, 'कंपित शीश' कहा—
मैंने, भग तब बाण-सदृश ही
लक्ष्य-हीन वह बाण गहा! ॥१२॥

शकुनि—अहो! कैसी हँसी की बात है! अजी! मैं आपसे यह पूछता हूँ—

और न जग में क्या बली, कहते प्रिय-गुण-जात।
क्या जग-व्यापक देखते, पांडव-गण को तात? ॥१३॥

भीष्म—गांधारराज! सब कुछ अनुमान से कहा जाता है।

जाते ले धनु शस्त्र हम, रण में, चढ़कर यान।
भुज-युग ले दो ही गए—भीम, हली बलवान ॥१४॥

शकुनि—

सहसा हम सब एक ने, जीते साहसि-राज।
उत्तर को भी उस कहें, कुछ जन अर्जुन आज! ॥१५॥

द्रोण—गांधारराज! क्या इसमें भी आपको कुछ संदेह है?

उत्तर भी क्या खींचे रण में,
धनुवर वज्र-ध्वनि-घनघोर ?
उत्तर के भी बाणों ने क्या,
ढके किसी क्षण रवि के छोर ? ॥१६॥

भीष्म—गांधारी-पुत्र ! मैं स्पष्ट कहे देता हूँ। क्या तुमने,

बाण-लिखित वचनों से, जिनका
गुण-रसना आख्यान किया—
नहिं जाना ? अर्जुन ने खींचा—
धनुष, न तुमने ध्यान दिया ? ॥१७॥

(सारथि का प्रवेश)

सारथि—जय हो, महाराज की। शांति-कर्म का अनुष्ठान कीजिएगा।

भीष्म—किस लिए ?

सारथि—

तुमको यह शांति योग्य थी—
पहले ही, जब बाण था लगा—
ध्वज में, यह बाण, पुंख पै—
पढ़ लो नाम किसी सुवीर का ॥१८॥

भीष्म—ले आओ।

(सारथि बाण समीप ले जाता है)

भीष्म (बाण हाथ में लेकर, देखकर) वत्स! गांधारराज! मेरी दृष्टि बुढ़ापे के कारण मंद पड़ गई है। इस बाण पर क्या लिखा है, बाँचो।

शकुनि—(बाण हाथ में लेकर, बाँचकर) अर्जुन का। (यह कहकर फेंक देता है और द्रोण के चरणों में गिर पड़ता है)

द्रोण—(बाण हाथ में लेकर) आओ, आओ, वत्स!

करने यह भीष्म-वंदना
शर फेंका मम शिष्यने अहो!
करने फिर वंदना मम
चरणों में गिर भूमि चूमता ॥१९॥

शकुनि—नहीं जी! बाण में विश्वास मत करो।

योद्धा अर्जुन नाम था, छोड़ा जिसने बाण।
उत्तर से भी स्पष्ट ही, ले लो लेख-प्रमाण ॥२०॥

दुर्योधन—

देने को यदि राज्य वह, लिख दे झूठा लेख!
दूँगा आधा राज्य मैं, तभी युधिष्ठिर देख ॥२१॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । विराट नगर से दूत आया है ।

दुर्योधन—लिवा लाओ ।

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—

अल्प मार्ग, अति वेग अश्व भी,
यान ने फिर विलंब है किया !
पार्थ-बाण-हत हस्ति-वृंद से,
दुःख से हम चलें, पटी धरा ॥२२॥

(भीतर जाकर, हाथ जोड़कर) अजी ! मैं आचार्य तथा पितामह-सहित संपूर्ण राज-मंडल को अभिवादन करता हूँ ।

सब—चिरजीवी बनो !

द्रोण—महाराज विराटेश्वर क्या कहते हैं ?

उत्तर—मुझे महाराज विराटेश्वर ने नहीं भेजा ।

द्रोण—तो तुम्हें किसने भेजा है ?

उत्तर—महाराज युधिष्ठिर ने।

द्रोण—धर्मराज ने क्या कहा है ?

उत्तर—सुनिएगा,

उत्तरा नव-वधू मिली हमें,
मैं नरेंद्र-गण-बाट जोहता।
हो वहीं, अथ यहीं ? कहाँ, कहो,
हो विवाह यह कौन स्थान में ? ॥२३॥

शकुनि—वहीं, वहीं।

द्रोण—

इस विध पांडव-गण का हमने पता लगाया,
'पंचरात्र' का काल अभी भी बीत न पाया।
विधिवत् जिसको प्रथम दिया था तुमने प्यारे !
धर्म-सहित दो भीख वही आँखों के तारे ! ॥२४॥

दुर्योधन—

पांडव-गण को राज्य मैं, देता पूर्व-समान।
सत्य रहे यदि, नर रहें होकर भी निष्प्राण ॥२५॥

द्रोण—

अहो ! सभी संतुष्ट हम, उन्नत दोनों वंश ।
वसुधा का शासन करे, केवल नृप-अवतंस ! ॥२६॥

(सब का प्रस्थान)